इकाई – 1 आर्थिक भूगोल का अर्थ

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 आर्थिक भूगोल का क्षेत्र

1.3 आर्थिक भूगोल की परिभाषायें

1.4 आर्थिक भूगोल की अभिनव प्रवृत्तियाँ

1.5 आर्थिक भूगोल का अन्य विषयों से संबंध

1.6 अर्थ व्याकरण की स्थानिक संरचना

1.7 आर्थिक क्रियाओं की स्थिति

1.8 सारांश

1.9 प्रश्न

इकाई – 2 आर्थिक सरंचना की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

2.1 आर्थिक क्रियायें

2.2 आर्थिक कारक

2.3 कृषि प्रदेश

2.4 कृषि प्रदेशों का सीमांकन

2.5 हीटेलसी का वर्गीकरण

2.6 शस्य संयोजन

2.7 वीवर की विधि

2.8 वॉन थ्यूनेन मॉडल का अवस्थिति सिद्धांत

2.9 सारांश

2.10 प्रश्न

इकाई – 3 आर्थिक भूगोल में उद्योगों का विभाजन इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्योगों का वर्गीकरण

3.2 संसाधनों की वर्गीकरण

3.3 बेवर का औद्योगिक अवस्थिति का सिद्धांत

3.4 लाश का औद्योगिक अवस्थिति का सिद्धांत

3.5 ईजार्ड का औद्योगिक उपस्थिति का सिद्धांत

3.6 लोहा एवं इस्पात उद्योग

3.7 रासायनिक उद्योग

3.8 इंजीनियरिंग उद्योग

3.9 सूती वस्त्र उद्योग

3.10 ऊनी वस्त्र उद्योग

3.11 रेशमी वस्त्र उद्योग

3.12 कृत्रिम रेशम उद्योग

3.13 सारांश

3.14 प्रश्न

इकाई – 4 परिवहन के साधन

इकाई की रूपरेखा

4.1 परिवहन व परिवहन को प्रभावित करने वाले कारक

4.2 जल परिवहन

4.3 स्थल परिवहन

4.4 रेलमार्ग परिवहन

4.5 सड़क परिवहन

4.6 वायु परिवहन

4.7 तुलनात्मक लागत सिद्धांत

4.8 बाजार की वर्गीकरण

4.9 नगरीय बाजार तंत्र

4.10 ग्रामीण बाजार तंत्र

4.11 व्यापार एवं वाणिज्य के विकास में बाजारों की भूमिका

4.12 सारांश

4.13 प्रश्न

इकाई – 5 आर्थिक विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 आर्थिक विकास का अर्थ

5.2 आर्थिक कारक

5.3 क्षेत्रीय विषमतायें

5.4 हरित क्रांति पर भारतीय अर्थ व्यवस्था का प्रभाव

5.5 भारतीय अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण

5.6 पर्यावरण पर प्रभाव

5.7 सारांश

5.8 प्रश्न

इकाई – 1

स्कोप – आर्थिक भूगोल का क्षेत्र व्यापक है इसमें मानव जीवन यापन हेतु की गई समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है यह वर्णन उनके क्षैत्रीय वितरण तक ही सीमित नहीं हेाता अपितु उनका कारण एवं प्रभाव के संदर्भ में किया जाता है क्योंकि कुछ क्षेत्र खाद्यान्न उत्पादन में अग्रणी है, तो दूसरे व्यापारिक बागाती कृषि के हैं कहीं पशुओं पर आधारित दुग्ध एवं मांस उद्योग का विकास हुआ है तो कहीं खनिज खनन अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करते हैं इसी प्रकार औद्योगिक विकास सीमित क्षेत्रों से भी हो सकता है व्यापार एवं परिवहन की भूमिका वर्तमान में अग्रणी है इस प्रकार के अनेकों प्रश्न आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत आते हैं। आर्थिक भूगोल में एक और प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन है जैसे– अवस्थिति, जलवायु, वनस्पति, मृदा, खनिज ऊर्जा संसाधन, थल का स्वरूप जल स्रोत है तो दूसरी ओर मानवीय संसाधन एवं उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है। इनके अर्न्त सम्बन्ध से विकसित आर्थिक क्रियायें, कृषि, पशुपालन, खनिज खनन ऊर्जा उत्पादन, उद्योग

परिवहन, विपणन आदि का समवेत वितरण आर्थिक भूगोल का मूल तत्व है।

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र निम्नांकित तथ्यों को सम्मिलित करता है।

1. आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन – आर्थिक भूगोल आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन है आर्थिक क्रियाओं को तीन वृहद् भागों में विभक्त किया जाता है।

   (अ) उत्पादन सम्बन्धी क्रियायें

   (ब) विनिमय सम्बन्धी क्रियायें

   (स) उपभोक्ता

(अ) उत्पादन सम्बन्धी क्रियायें –

इसके अन्तर्गत प्रथम–प्राथमिक उत्पादन क्रियायें अर्थात् कृषि वनोत्पादन, खनिज खनन आदि सम्मिलित है जिनसे प्रकृति का योगदान प्रमुख होता है, द्वितीय– भोग उत्पादक के अन्तर्गत प्रकृति से प्राप्त पदार्थो के स्वरूप में वृद्धि की जाती है इसके

मुख्यतः औद्योगिक क्रियायें सम्मिलित हैं जैसे– कपास से वस्त्र निर्माण, गन्ने से चीनी निर्माण, लौह खनिज से इस्पात निर्माण आदि। तृतीय उत्पादन – में मूलतः वितरण एवं सेवाऐं सम्मिलित की जाती है व्यापार विभाजन, परिवहन, बैंकिंग, मरम्मत, अधिकारी, व्यापारी, अध्यापक, डॉक्टर आदि आर्थिक क्रियाओं में इन्हीं समस्त कारकों का विश्लेषण किया जाता है जो उनकी उपस्थिति, उत्पादन, वितरण आदि को प्रभावित करते हैं।

(ब) **विनिमय सम्बन्धी आर्थिक क्रियायें –** इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवहन है जल, थल एवं वायु के माध्यम से ही उत्पादित वस्तु विपणन केन्द्रो एवं उपभोक्ताओं तक पहुँचती है विनिमय का कार्य कतिपय केन्द्रों पर सम्पन्न होता है जिन्हें विपणन केन्द्र (Market Centers) कहते हैं यदि उत्पादक, उपभोक्ता को मिलाते हैं तथा विभिन्न प्रक्रियाओं तक पहुँचाते हैं, आर्थिक भूगोल का प्रमुख पक्ष परिवहन एवं विपणन है।

(स) **उपभोक्ता –** यह आर्थिक क्रिया का प्रमुख बिन्दु है क्योंकि सम्पूर्ण उत्पादन उनकी माँग के अनुरूप ही किया जाता है अतः

आर्थिक भूगोल में उनके व्यवहारात्मक पक्ष का विश्लेषण होता है।

2. **आर्थिक क्रियाओं की उपस्थिति –**

आर्थि भूगोल के अन्तर्गत स्थिति का विश्लेषण महत्व रखता है। अक्षांशीय एवं जलवायु के संदर्भ में स्थिति का विश्लेषण होता है वहीं स्थानिक विश्लेषण को महत्व दिया जाता है कृषि उपज हो, उद्योग हो या विपणन सभी का क्षैत्रीय वितरण भौगोलिक विश्लेषण का महत्वपूर्ण पक्ष है।

3. **आर्थिक क्रियाओं की विशेषतायें –** आर्थिक विशेषताओं को वर्जित करना आर्थिक भूगोल का क्षेत्र हैं, जैसे– कृषि वहाँ होती है उसका प्रकार क्या है किस प्रकार होती है, कौन कौन सी फसले हैं, उत्पादन की खपत कितनी है वह क्षैत्रीय है या विश्वव्यापी है यदि विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

4. **आर्थिक संसाधनों के उपयोग एवं संरक्षण –** यह आर्थिक भूगोल का महत्वपूर्ण पक्ष है आर्थिक संसाधन जैसे– वन, भूमि, कृषि, खनिज, ऊर्जा संसाधनों का वर्णन किया जाता है वे संसाधन

असीम नहीं होते इनका किस तरह से उपयेाग किया जाये एवं संरक्षण किस तरह से किया जाता है आर्थिक भूगोल में इन्हीं तथ्यों का समुचित अध्ययन किया जाता है।

5. **आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित समस्यायें –** कृषि, खनिज, पशुपालन, उत्पादन, उद्योग, व्यापार आदि की समस्यायें होती हैं जिसके कारण इन क्रियाओं का समुचित विकास होता है इनका समुचित विकास ही समस्याओं का समाधान है।

6. **आर्थिक प्रादेशीकरण एवं नियोजन –** आर्थिक प्रदेशीकरण वर्तमान युग की पहचान है आर्थिक भूगोल विकास के स्तर के आधार पर प्रत्येक ब्रहत् क्षेत्र को आर्थिक प्रदेशों में विभक्त कर उनकी विशेषताओं को इंगित करता है सर्वप्रथम प्रत्येक आर्थिक क्रिया के आधार पर प्रदेशों का निर्माण किया जाता है जैसे– कृषि प्रदेश, औद्योगिक प्रदेश आदि।

7. **आर्थिक भूगोल के प्रतिरूप –** इसके अन्तर्गत हम पूर्ण एवं अपूर्ण आधारों एवं लक्षणों से है।

ECONOMIC GEOGRAPHY -

भूगोल मानव पर्यावरण सम्बन्धों को स्थानिक एवं क्षेत्रीय संदर्भ में वर्णित करता है वास्तव में प्रत्येक क्षेत्र में मानवीय क्रियाओं का विकास इन्हीं अन्तर सम्बन्धों का प्रति फलन है। जो समय एवं स्थान के साथ तथा तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति के साथ परिवर्तित होता रहता है मानव की प्राथमिक आवश्यकता भोजन वस्त्र और आवास है और पूर्ण करने के लिये निरंतर विकास करता रहता है और जीवन की गुणवत्ता में परिवर्तन करता रहता है।

विविध आर्थिक क्रियाओं के विकास हेतु यह प्रकृति से संघर्ष एवं समायोजन करता है। इसी के प्रतिफल रूप में भौगोलिक परिस्थितियों में जीवन का विकास या दूसरे शब्दों में आर्थिक विकास में भिन्नता है जहाँ एक ओर सम्मुनत् प्रदेश है। तो दूसरी ओर प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों के कारण नितान्त अविकसित क्षेत्र है इस सम्पूर्ण विविधता का अध्ययन ही भूगोल का विषय क्षेत्र है।

भूगोल का प्रारम्भिक स्वरूप वर्जनात्मक था जिसके अंतर्गत सम्पूर्ण प्राकृतिक एवं मानवीय क्रियाओं एवं प्रक्रमों का क्षैत्रीय एवं विश्व व्यापी

वर्णन मानचित्रीय स्थिति के संदर्भ में किया जाता रहा है किन्तु शीघ्र ही इसकी दो शाखाओं में विभाजन हो गया।

1) प्राकृतिक भूगोल या भौतिक भूगोल Physical Geography

2) मानव भूगोल Human Geography

मानव भूगोल के अंतर्गत सम्पूर्ण मानवीय क्रियओं को भौगोलिक परिवेश में वर्णन किया जाता है। जिसमें आर्थिक क्रियायें भी शामिल है ज्ञान के विस्तार एवं भौगोलिक अध्ययन में विशिष्टीकरण के प्रारंभ से भूगोल वैवकाओं ने यह अनुभव किया कि मानव भूगोल में यद्यपि आर्थिक तथ्यों एवं क्रियाओं का वर्णन एवं विश्लेषण किया जाताहै किंतु यह सीमित होता है यह शोध परक न होकर कम उपयोगी है इस कारण आर्थिक भूगोल की एक वृहद् शाखा का विकास हुआ इसकी अनेक विशिष्ट उप–शाखाओं का निर्माण हुआ। जैसे–

कृषि भूगोल

औद्योगिक भूगोल

संसाधन भूगोल

परिवहन भूगोल

विपणन भूगोल

अतः स्पष्ट है कि आर्थिक भूगोल, भूगोल की अविभाजित शाखा है जो अपने काल में सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं को समेटे हुये हैं आर्थिक भूगोल की उपयोगिता अत्याधिक है क्योंकि यह मात्र ज्ञान का स्रोत नहीं अपितु आर्थिक विकास एवं नियोजन का पथ प्रदर्शक है।

DEFINATION (परिभाषायें) –

आर्थिक भूगोल का सूत्रपात 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से हुआ था तथा इसका प्रारम्भिक स्वरूप वाणिज्य भूगोल (Commercial Geography) के रूप में हुआ सर्वप्रथम 1882 में जर्मन विद्वान गोत्ज (Gatz) ने आर्थिक भूगोल शब्दावली का प्रयोग कर आर्थिक भूगोल को परिभाषित किया।

‘‘Economic Geography makes scientific investigation of world areas in their direct influence on the production of goods.’’

''संसार के विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष प्रभाव के वैज्ञानिक अन्वेषण को आर्थिक भूगोल कहते हैं'' इस प्रकार आर्थिक भूगोल एक स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित होता हुआ वर्तमान में एक वटवृक्ष का रूप ले चुका है इसकी विभिन्न भूगोलवैत्ताओं द्वारा निम्न परिभाषायें हैं।

1. **मर्फी के अनुसार –** आर्थिक भूगोल का सम्बन्ध स्थान–स्थान की उन समानताओं और विविधताओं से है,

''Economic geography has to do with similarties and difference from place to place in the ways people make a living.''

मर्फी ने उन भौगोलिक परिस्थितियों की ओर इंगित किया है जिनसे जीवन अर्थात्, आर्थिक क्रियाकलाप विकसित होते हैं, यह सर्व विदित है कि विश्व में कहीं कृषि की प्रधानता तो कहीं पशुपालन है, एक ओर खनिज खनन है तो दूसरी ओर औद्योगिक विकास। आज भी विश्व के कतिपय भागों में आर्थिक विकास अवरूद्ध है जैसे – विषुवत्त रेखीय प्रदेश, टुण्ड्रा प्रदेश, उच्च पर्वतीय प्रदेश, अण्टार्कटिका आदि क्योंकि यहाँ जो भौगोलिक परिस्थितियाँ मानव विकास एवं आर्थिक

विकास के प्रतिकूल है विश्व के विभिन्न भागों में धरातल, भूगर्भ बनावट, जलवायु प्राकृतिक वनस्पति, मृदा आदि में जहाँ एक ओर समानता है उनमें विविधता भी पर्याप्त है इसी कारण विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय व्यवसाय अथवा जीवन भिन्न है आर्थिक भूगोल इन्हीं भिन्नता समानताओं का तार्किक विश्लेषण का भविष्य के विकास का मार्ग प्रदर्शित करता है।

2. आर.एन. ब्राउन के अनुसार – आर्थिक भूगोल, भूगोल शास्त्र का वह पान है जो मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर उसकी जैविक एवं अजैविक पर्यावरण के प्रभावों का अध्ययन करता है।

‘‘Economic Geography is that aspect of the subject which deals with the influences of the environment, inorganic onthe economic activities of the man.’’

परिभाषा से स्पष्ट है कि पर्यावरण मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित करता है पर्यावरण के जैविक तत्व जैसे – वनस्पति, जीव जन्तु तथा अजैविक तत्व जैसे– उच्चावच, जलवायु, भूगर्भिक बनावट, मृदा आदि सामूहिक रूप से आर्थिक क्रियाओं को विकसित करने में सक्रिय भूमिका निभाती है इसी कारण नदियों में सक्रिय

भूमिका निभाती है इसी कारण नदियों के मैदानी भाग जैसे गंगा सिंधु ब्हांगहो मीकांग, इरावदी, नील आदि में कृषि का विकास हुआ न्यूजीलैण्ड तथा डेनमार्क जैसे देशों की अर्थव्यवस्था में पशुपालन का योगदान है पर्यावरण के प्रतिकूल होने पर अमेजन बेसिन, सहारा का मरूस्थल, साइबेरिया, ग्रीनलैण्ड, अंटार्कटिका आदि में वर्तमान वैज्ञानिक तकनीकि विकास के उपरांत भी आर्थिक विकास नहीं हो पाया है आर्थिक भूगोल विकास के कारकों एवं उसके बाधक कारकों का सम्पूर्ण विश्लेषण विश्व व्यापी परिवेश में करता है।

3. शाह के अनुसार – आर्थिक भूगोल विश्व के मानव जीवन के विकास के परिचायक के रूप में प्राथमिक संसाधनों और औद्योगिक वस्तुओं के संदर्भ में जीवनयापन की समस्याओं से संबंधित है।

‘‘Economic Georaphy is concemal with problem of making a living with world industries with basic resources and industrial commodities.’’

शाह के अनुसार विश्व में मानव जीवन के विकास के परिचायक के रूप में प्राथमिक संसाधनों जिनमें प्राकृतिक जैविक एवं आर्थिक संसाधन सम्मिलित हैं, को मानाहै इसी संदर्भ में उन्होनें उद्योग एवं

औद्योगिक उत्पादों को विशेष रूप से रेखांकित किया है सामूहिक रूप से संसाधन एवं उद्योग आर्थिक प्रगति एवं जीवन की गुणवत्ता से नियंत्रक एवं निर्धारक है तथा आर्थिक भूगोल इनका पूर्ण, विवरण के साथ उस समस्याओं को भी इंगित करता है।

4. वाई.जी. साँराकिन के अनुसार – आर्थिक भूगोल समाज के विकास के साथ विकसित हुए क्षैत्रीय व्यवस्थाओं को वर्णित करता है तथा इन वास्तविक क्षेत्रीय गतिविधियों में भी सम्बन्धित है जो साथ की उत्पादन एवं सामाजिक क्रियाओं से जुड़ी हुई है।

‘‘Economic Geography deals with the territoral systems that take shape as socieity develops and with the actual teriotorial manifestations of mans production and other social activities.’’

5. सी.एफ. जोन्स के अनुसार – मनुष्य के उत्पादक उद्यमों एवं उनकी उपजों के वितरण से उसकी परिस्थिति के प्राकृतिक तत्वों का आर्थिक दशाओं के सम्बन्ध का अध्ययन आर्थिक भूगोल है।

‘‘Economic Geography is the study of the relation of the physical factors of the environment and the economic

conditions to the productive occupation and the distribution of their output.''

6. बैंगस्टन तथा रोयन के अनुसार – आर्थिक भूगोल विश्व के विभिन्न भागों के मूलभूत साधनों एवं प्रधान उत्पादक क्रियाओं की विशेषताओं का अनुसंधान करता है और वह मूलभूत साधनों के उपयोग पर प्राकृतिक परिस्थितियों की विभिन्नताओं के प्रभावों का मूल्यांकन करता है।

''Economic Geography investigators diversity of basic resources and of mayor productive of the different part of the world, it tries to evaluate the effects that differences in physical environment have upon utilization of these resources.''

8. अलेक्जेण्डर तथा गिन्सन के अनुसार– मानव की उत्पादक, विनिमय एवं उपभोक्ता से सम्बंधित क्रियाओं का पृथ्वी तल पर क्षेत्रीय वितरण का अध्ययन आर्थिक भूगोल है।

‘‘Economic Geography is the study of the areal variation on the earth's surface in man's activities related to producing, exchanging and consuming with.’’

ये सभी परिभाषायें आर्थिक भूगोल के सम्पूर्ण परिवेश को समाहित करती है आर्थिक क्रियाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रिया उत्पादन है जिसमें कृषि, उत्पादन, खनिज औद्योगिक उत्पादन आदि सभी सम्मिलित होते हैं उत्पादन के पश्चात् उत्पादित वस्तु को उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए परिवहन की आवश्यकता होती है परिवहन वहाँ तक पहुँचते हैं जहाँ तक विनिमय होता है यह क्रिया स्थानीय, क्षैत्रीय विपणन केन्द्र जहाँ व्यापारिक गतिविधियाँ सम्पन्न होती है ये क्रियायें प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न हो सकती है अतः आर्थिक भूगोल सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं को भौगोलिक पर्यावरण के सामन्जस्य के साथ प्रस्तुत करता है। कुछ अन्य परिभाषायें भी निम्न प्रकार है जिसमें आर्थिक भूगोल का विश्लेषण किया गया है।

लॉयड और डिकन के अनुसार, ‘‘अर्थ व्यवस्था के स्थानिक आयाम से सम्बन्धित व्यावहारिक विज्ञान के रूप में आर्थिक भूगोल ऐसे सामान्य

नियमों एवं सिद्धांतों की रचना से सम्बन्धित है जो अर्थव्यवस्था के परिचालन की व्याख्या करती है।''

होडर और ली ने अपनी पुस्तक Economic Geography में आर्थिक भूगोल की मूल प्रकृति को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि ''आर्थिक भूगोल सामान्यतः अर्थव्यवस्था के क्रियान्वयन से भिन्न तत्वों से सम्बन्धित रहा है। इन तत्वों के व्यवहार एवं अर्न्तसम्बन्ध अथवा आर्थिक शाविक के प्रचलित वितरण के प्रभाव से सम्बन्धित है।

भूगोल के आवसफोर्ड शब्दकोश के अनुसार– आर्थिक भूगोल संसाधनों वस्तुओं और सेवाओं के परिवहन एवं उपयोग तथा उनके भूदृश्य पर प्रभाव के स्थानिक वितरण का विश्लेषण करता है।

RECENT TRENDS IN ECONOMICS GEOGRAPHY

(आर्थिक भूगोल की अभिनय प्रवृत्तियाँ)

भूगोल की प्रकृति, विषय क्षेत्र, अध्ययन विधि आदि अत्याधिक परिवर्तनशील नहीं है क्योंकि आर्थिक भूगोल मानव की सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक परिवेश में अध्ययन करता है। सामान्य वर्णन एवं विश्लेषण के साथ आज आर्थिक भूगोल में आर्थिक विकास के

विभिन्न आयामों, व्यावहारिक समस्याओं एवं आर्थिक नियोजन का न केवल अध्ययन किया जाता है अपितु विकास की सम्भावनाओं का भी पता लगाया जाता है। आर्थिक भूगोल की नवीन प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार है।

1. अन्तर विषयी प्रवृत्ति का विकास (Development of Inter disaplinary Nature) – भूगोल में अन्तर विषयी प्रकृति सदैव से ही रही है किन्तु आर्थिक भूगोल में विगत् चार या पाँच दशकों से इस प्रवृत्ति का अधिक विकास हुआ है इससे सामाजिक एवं प्राकृतिक विज्ञानों का समावेश ही रहा है आर्थिक भूगोल में सर्वाधिक अर्धशास्त्र के नवीन तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है। उत्पादन, विनिमय तथा उपभोग से संबंधित सिद्धांत जो अर्थशास्त्र में अध्ययन किये जाते थे आज आर्थिक भूगोल में प्रमुखता से लिये जाते हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक तथ्यों का अध्ययन करते समय वनस्पति विज्ञान, जैव विज्ञान व पर्यावरण विज्ञान, जलवायु विज्ञान आदि की सहायता ली जाती है आर्थिक भूगोल की प्रकृति में इस परिवर्तन के कारण इसका स्वरूप व्यावहारिक बहुत हो गया है।

2. विशिष्टीकरण (Specialisation) – आर्थिक भूगोल में वर्तमान में अत्याधिक विशिष्टीकरण हो गया है जो इसके विकास व निरन्तर विकसित होने की प्रवृत्ति का परिचायक है। आर्थिक भूगोल की विभिन्न शाखायें, कृषि भूगोल, संसाधन भूगोल, परिवहन भूगोल, विपणन भूगोल, व्यापारिक भूगोल, पर्यटन भूगोल आदि विकसित हुये हैं जो इसमें हो रहे विशिष्टीकरण का परिचायक है इस विकास से आर्थिक भूगोल का क्षेत्र न केवल व्यापक हुआ है अपितु बहुत उपयोगी हो गया है। आर्थिक भूगोल विशिष्टीकरण के कारण एक गतिशील विषय बन गया है। इस प्रकार आर्थिक भूगोल, भूगोल की सर्वाधिक विकसित शाखा बन गया है।

3. अर्थव्यवस्था का पर्यावरणीय सम्बन्धों का अध्ययन (Environment Relation of the Economy) – प्रत्येक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का निर्धारण वहाँ का पर्यावरण करता है और वह पारिस्थितिकी का अंग होता है आर्थिक भूगोल पर्यावरणीय भूगोल का (तत्वों का) आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव तथा इसके विपरीत आर्थिक क्रियाओं का पर्यावरण पर प्रभाव का अध्ययन कर विकास की नई दिशा का मार्ग प्रशस्त करता है।

4. स्थानिक (क्षैत्रीय) प्रारूप (Spatial Pattern) – भूगोल में स्थानिक स्वरूप का विवेचन सभी शाखाओं में प्रचलित है।

लॉश द्वारा विकास का क्षैत्रीय प्रारूप मॉडल के लिए केन्द्रिय स्थल सिद्धांत तथा आर्थिक भूदृश्य न केवल वर्तमान तक चर्चा में है अपितु इसको विकसित किया गया है अर्थव्यवस्था का भौगोलिक स्वरूप के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था का सामान्य मॉडल तथा अर्थव्यवस्था का स्थानिक मॉडल भी इसी दिशा को इंगित करता है।

5. बाजारोन्मुखी अर्थ तंत्र का अध्ययन एवं विपणन भूगोल का विकास– आधुनिक अर्थतन्त्र का एक प्रमुख पहलू है इसका बाजारोन्मुखी होना बाजार अथवा विपणन केन्द्र वे स्थल होते हैं, जहाँ उत्पादक एवं उपभोक्ताओं का मिलन होता है तथा विपणन के माध्यम से वस्तुओं का क्रय–विक्रय होता है।

बाजार केन्द्र एवं व्यापारिक तथा विपणन केन्द्रों के आर्थिक भूगोल में महत्वपूर्ण होने के कारण ही विपणन भूगोल का विकास हुआ वर्तमान में विपणन भूगोल आर्थिक भूगोल की तरह शाखा है अनेक भूगोल वेत्ताओं जैसे– बी.जे.एल. बेरी, आर.एच.टी. स्मिथ, बी. डब्ल्यू. होडर, बी.जे. ग्रार्नियर, आर.एल. डेविस पीटरस्कॉट भारत के पी.

के. श्रीवास्तव, एच.एम, बी.जी. तानस्कर आदि ने इसको विकसित किया।

विपणन भूगोल ने आर्थिक भूगोल में अनेक नवीन तथ्यों का समावेश किया है तथा इसकी अभिनय प्रवृत्तियों को नवीन दिशा दी है।

6. कृषि विकास के भौगोलिक अध्ययन में नवीन पक्ष (New Aspects in Geographical Study of Agricultural Development)– आर्थिक भूगोल में कृषि का महत्वपूर्ण पक्ष है कृषि उपजों का उत्पादन, वितरण प्रकार के अतिरिक्त विगत् दशकों में कृषि से सम्बन्धित अनेक नवीन विषयों को आर्थिक भूगोल में सम्मिलित किया गयाहै जैसे– शस्य संयोजन, फसलीय सघनता, एवं उत्पादकता, कीटनाशकों का कृषि पर प्रभाव, कृषि प्रदेशों का निर्धारण आदि जे. कोस्ट्रोविकी द्वारा प्रस्तुत ‘‘Agricultural Typology’’ ने कृषि प्रकारों के अध्ययन को नवीन दिशा दी है।

7. परिवहन भूगोल में नवीन प्रकृति (New Trands in Transport Geography)– परिवहन भूगोल का आर्थिक भूगोल की शाखा के रूप में विकास हुआ है साथ ही इसमें आर्थिक भूगोल को नवीनता भी प्रदान की है परिवहन प्रवेश्यता, संयोजकता, आवागमन

प्रारूप, परिवहन लागत परिवहन नियोजन आदि के माध्यम से परिवहन के विशिष्ट पक्षों को स्पष्ट किया जाता है।

8. उद्योगों का उपस्थिति एवं स्थानीयकरण का अध्ययन (Study of industrial location and their localisation)– औद्योगिक भूगोल के विकास के साथ उद्योगों से सम्बन्धित नवीन पत्र पर जोर दिया गया। अल्फेड बेवर, टार्ड फवंडर का बाजार क्षेत्र सिद्धांत, मेलबिन ग्रीनहर का अर्न्तराष्ट्रीय सिद्धांत, फलेटर का बाजार प्रतिस्पर्धा सिद्धांत, हूबर का न्यूनतम लागत का सिद्धांत, वाल्टर इकाई का स्थानीयकरण का सिद्धांत आदि ने आर्थिक भूगोल में उद्योगों के अध्ययन को नवीन दिशा प्रदान की।

9. सांख्यिकी विधियों का प्रयोग (Application of statistical Techniques)– आर्थिक भूगोल में 1980 के दशक के बाद से ही सांख्यिकीय विधियों का प्रचलन तीव्रता से होने लगा है विलियन गेरीसन, बेन बेरी, विलियन वानिट्ज के साथ अमेरिकी, ब्रिटिश एवं स्वीडिश भूगोलवक्ताओं ने इसकी पृष्ठभूमि तैयार की विनियम बुंगे ने गणितीय भूगोल का स्वरूप प्रदान किया है।

10. विकास की नवीन अवधारणायें (New concepts of development)– आर्थिक विकास किसी भी देश अथवा प्रदेश की प्राथमिकता होती है यद्यपि आर्थिक विकास का सामान्य रूप में आर्थिक भूगोल में अध्ययन किया जाता रहा है इसे निम्न प्रकार द्वारा भी समझ सकते हैं।

(अ) सतत् विकास की अवधारणा

(ब) आर्थिक विकास और जीवन की गुणवत्ता

(स) समग्र विकास

(अ) सतत विकास – विकास ऐसा होना चाहिए जिससे पर्यावरण संतुलन बना रहे दूसरे शब्दों में विनाश रहित विकास औद्योगिकीकरण, प्रौद्योगिकी विकास, परिवहक तंत्र का विकास, कृषि में कीटनाशकों का प्रयोग संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन आदि विकास द्वारा पर्यावरण न केवल प्रदूषित होता है अपितु पारिस्थितिकी तंत्र असंतुलित होता जा रहा है यह मानव अस्तित्व के लिए भी खतरा है।

(ब) आर्थिक विकास की ओर जीवन की गुणवत्ता – विकास का उद्देश्य मानव के जीवन को सुख, सुविधायें प्रदान करना है जिससे

उसका जीवन सुखी हो सके उपभोक्ता वादी संस्कृति से संसाधनों का दोहन हो रहा है पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है और उसका प्रतिकूल प्रभाव न केवल मानव अपितु सम्पूर्ण मानव जाति पर पड़ रहा है इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुये आर्थिक भूगोल में विकास के साथ जीवन की गुणवत्ता को बनाये रखने पर बल दिया जाता रहा है।

(स) समग्र विकास– आर्थिक विकास की वर्तमान अवधारणा में समग्र विकास होना चाहिए कभी–कभी किसी एक क्षेत्र का विकास एक तरफा हो जाता है विकास में कृषि, खनिज, उद्योग, परिवहन, विपणन व्यापार के साथ नगरीय एवं ग्रामीण विकास होना आवश्यक है आर्थिक भूगोल में समग्र विकास के तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है।

अन्य प्रवृत्तियाँ (Other Trends) – आर्थिक भूगोल में नवीन क्षेत्र है–

1. निर्णय लेने की प्रक्रिया के अन्तर्गत, प्रकृति, प्रक्रिया प्रभाषित करने वाले तथ्यों तथा विधि का अध्ययन सम्मिलित है।

2. उत्पादन लागत के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना।

3. गुरूत्व मॉडल के प्रयोग से औद्योगिक उपस्थिति का विश्लेषण करना।

4. व्यवहारात्मक दृष्टिकोण का अध्ययन।

5. दूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तंत्र।

6. सम्पूर्ण तथ्यात्मक एवं सैद्धांतिक विश्लेषण करना।

Relation of Economic Geography With Economic And Other Branches of social science आर्थिक भूगोल का अन्य विषयों से संबंध– भूगोल के समान ही आर्थिक भूगोल का क्षेत्र भी अत्याधिक व्यापक है और इसका अन्य सामाजिक विज्ञानों से घनिष्ट सम्बन्ध है इनकी प्रकृति अंतर विषयी है अर्थात् जहाँ एक ओर आर्थिक भूगोल अन्य विषयों से सामग्री एवं सिद्धांत ग्रहण करता है वहीं दूसरी ओर इन विषयों को नवीन तथ्य भी प्रदान करता है आर्थिक क्रियायें तथा इनका भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में निरूपण वर्तमान में विकास का परिचायक है आज विषय में आत्म निर्भरता अधिक हो गई है तथा वैश्वीकरण में निरन्तर वृद्धि हो रही है। आर्थिक विकास आज प्रत्येक देश का मूलाधार है जिसका प्रभाव सामाजिक एवं

राजनैतिक स्वरूप पर स्पष्ट होता है अतः आर्थिक भूगोल अन्य शास्त्रों से भी सम्बन्धित है।

आर्थिक भूगोल एवं अर्थशास्त्र– आर्थिक भूगोल तथा अर्थशास्त्र में घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि मूलरूप से दोनों ही विषय आर्थिक क्रियाओं और अर्थव्यवस्था से सम्बंधित है आर्थिक क्रियायें अर्थात् कृषि, पशुपालन, खनन, उद्योग, ऊर्जा, परिवहन, विपणन एवं व्यापार का अध्ययन अर्थशास्त्र एवं भूगोल का आधार है यद्यपि दोनों के अध्ययन दृष्टिकोण में अंतर है जहाँ अर्थशास्त्र वित्तीय को महत्व देता है वहीं आर्थिक भूगोल भौगोलिक पर्यावरण एवं उसके प्रभाव को। अर्थव्यवस्था का अध्ययन आर्थिक भूगोल में उसके स्थानिक स्वरूप को महत्व दिया जाता है अर्थशास्त्र को सैद्धांतिक कहा जाता है और आर्थिक भूगोल को अनुभाविक इसका कारण अर्थशास्त्र में उत्पादन प्रक्रिया, बाजार प्रक्रिया, मुद्रा विनिमय आदि को सैद्धांतिक पत्र का अध्ययन होता है।

उत्पादन कौन करता है, कहाँ करता है कैसे होता है या आर्थिक भूगोल का विषय है वर्तमान में राष्ट्रीय एवं क्षैत्रीय विकास में अर्थशास्त्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है बल्कि आर्थिक, भूगोल इसकी पृष्ठभूमि तैयार करता है ये दोनों विषय एक दूसरे के पूरक हैं केन्द्रिय

स्पल सिद्धांत वॉन टपूनेन का कृषि स्थिति सिद्धांत, स्मिथ का औद्योगिक उपस्थिति सिद्धांत तथा गुरूत्व मॉडल अनेक सिद्धांत दोनों विषयों में सम्मिलित है।

आर्थिक भूगोल और राजनीतिशास्त्र– प्रत्येक देश एवं विश्व की आधुनिक अर्थ व्यवस्था का निर्धारण तथा नीतियों को बनाना प्रशासन पर निर्भर करता है राजनीतिशास्त्र राज्य और राष्ट्र के उद्भव विकास का ही नहीं अपितु उसके राजनीति एवं आर्थिक नीतियों का निर्धारण विशेषकर व्यापार की नीतियाँ अर्न्तराष्ट्रीय आधार पर तैयार की जाती है आर्थिक भूगोल सम्पूर्ण आर्थिक संसाधनों का ज्ञान प्रदान करता है विश्व में संसाधनों की उपलब्धता में अत्याधिक क्षेत्रीय भिन्नता है इसका अध्ययन आर्थिक भूगोल का मूल आधार है वर्तमान विश्व में अनेक आर्थिक संगठन है जैसे– विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, यूरोपियन यूनियन, ओपेक आदि इसका अध्ययन दोनों विषयों में किया जाता है क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक विकास हेतु नीति निर्धारण में आर्थिक भूगोल सहायक होता है आर्थिक तत्व राष्ट्रीय विकास के परिचायक होते हैं। जिनका सम्पूर्ण विवरण आर्थिक भूगोल में होता है

उन्हें दृष्टिगत रखते हुए राजनीति प्रशासन विकास की योजनायें तैयार करता है निःसंदेह आर्थिक भूगोल राजनीति का पूरक है।

आर्थिक भूगोल तथा समाजशास्त्र–

समाजशास्त्र का मूल आधार मानव की सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन है इन क्रियाओं में आर्थिक क्रियाओं का भी महत्वपूर्ण योग होता है। आर्थिक विकास के बिना सामाजिक विकास संभव नहीं है और सामाजिक विकास के साथ आर्थिक विकास होता जाता है अर्थात् आर्थिक और सामाजिक क्रियायें एक दूसरे की पूरक हैं आर्थिक भूगोल में मानव के प्रमुख व्यवसायों यथा, कृषि, पशुपालन, खनन, उद्योग आदि का भौगोलिक पृष्ठभूमि में अध्ययन किया जाता है यह अध्ययन समाजशास्त्रियों के लिए भी सहायक होता है क्योंकि प्राकृतिक कारक सामाजिक व्यवस्था एवं विकास में सहायता होते हैं अतः आर्थिक भूगोल एवं समाजशास्त्र एक दूसरे से सम्बंध रखते हैं।

आर्थिक भूगोल तथा इतिहास –

इतिहास मानव के विकास उनकी क्रियाओं, घटनाओं आदि का समुचित ब्यौरा प्रस्तुत करता है। इसी क्रम में आर्थिक इतिहास का

विवरण होता है देश/राज्य अथवा प्रदेश में किस प्रकार आर्थिक विकास का घटनाक्रम अर्थात् उत्थान पतन हुआ यह इतिहास से ज्ञात होता है इसका प्रमुख उदाहरण उपनिवेशों की स्थापना एवं कृमिक समाप्त होना है इनके समाप्त होने में शोषणकारी नीतियों का प्रमुख योग रहा है दूसरा उदाहरण सोवियत संघ का विघटन है एक समय का शक्तिशाली देश आज कई देशों में विभक्त है। जिसका मुख्य कारण आर्थिक रहा है वहीं आर्थिक भूगोल उन भौगोलिक कारणों का विश्लेषण करता है जिसके कारण विकास में बाधा हुई है इसी आधार पर भावी विकास की योजना का निर्धारण होता है अतः यह दोनों क्षेत्र सामन्जस्य रखते हैं।

आर्थिक भूगोल का वनस्पति शास्त्र से संबंध –

वनस्पति शास्त्र में वनस्पतियों के विविध प्रकार एवं उनकी संरचना का अध्ययन किया जाता है जबकि आर्थिक भूगोल में वनस्पतियों से होने वाले आर्थिक उत्पादन एवं व्यापार का अध्ययन किया जाता है आर्थिक भूगोल में प्राकृतिक वनस्पति के वितरण पक्ष को प्रमुखता से लिया जाता है जो वनस्पति शास्त्रीयों के लिये भी उपयोगी है।

आर्थिक भूगोल का प्राणीशास्त्र से संबंध –

प्राणीशास्त्र में विभिन्न जीव जन्तु पक्षी तथा मानव का विश्लेषणात्मक अध्ययन होता है इनकी संरचना एवं स्वभाव आदि से आर्थिक क्रियायें प्रभावित होती हैं आर्थिक क्रियाओं तथा आर्थिक लाभ परिपेक्ष में आर्थिक भूगोल इनका अध्ययन करता है।

आर्थिक भूगोल का रसायन शास्त्र से संबंध – वर्तमान में रसायन शास्त्र ने अभूतपूर्व प्रगति की है तथा अनेक रसायन तैयार किये हैं, कृषि, उद्योग, पशुपालन, मत्सय उत्पादन आदि में उपयोगी है उर्वरकों का प्रयोग तथा कषि एवं उर्वरक उद्योग आर्थिक भूगोल के अध्ययन का विषय है इसी प्रकार सीमेन्ट उद्योग, कागज उद्योग, कीटनाशक उद्योग, अनेक घरेलू उत्पादन रसायनों की ही देन है आर्थिक भूगोल में एक ओर रसायनों का अध्ययन किया जाता है तो दूसरी ओर रसायनों के आर्थिक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाता है।

आर्थिक भूगोल का भू विज्ञान, जलवायु विज्ञान एवं समुद्र विज्ञान से संबंध –

आर्थिक भूगोल में मृदा खनिज संसाधनों का प्रमुखता से अध्ययन किया जाता है मृदा की बनावट एवं स्वरूप क्षेत्र की भू संरचना पर निर्भर करती है इसी प्रकार खनिजों की उपलब्धि भी भूगर्भिक बनावट द्वारा ही निर्धारित होती है जैसे कि परतदार चट्टानों में कोयला एवं पेट्रोलियम प्राप्त होता है तथा धात्विक खनिज आग्नेय चट्टानों से। स्पष्ट है कि किसी भी प्रदेश की संरचना आर्थिक संसाधनों विशेषकर खनिज संसाधनों को नियंत्रित करती है।

जलवायु विज्ञान में जलवायु से संबंधित प्रत्येक तथ्य तापमान, वायुभार, हवांऐ, वर्षा आदि का सम्पूर्ण विश्लेषण होता है ये सभी तथ्य मानव एवं उनकी आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं कृषि का सीधा सम्बन्ध जलवाय से होता है इसी प्रकार उद्योग, पशुपालन, परिवहन भी जलवायु से प्रभावित होते हैं आर्थिक भूगोल के विश्लेषण में जलवायु विज्ञान से उपलब्ध तथ्यों का आर्थिक विकास पर प्रभाव का अध्ययन किया जाता है इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन ओजोन का

विरल होना, ग्रीन हाउस प्रभाव, तापमान वृद्धि आदि आर्थिक भूगोल में ही सम्मिलित है।

समुद्र विज्ञान में महासागरों व सागरों की संरचना जब भी बनावट, धारायें, ज्वार, भाटा, प्रवाल तथा समुद्री जीवों एवं सामुद्रिक संसाधन, महानगरीय संसाधन, मछली उत्पादन आदि का अध्ययन करता है वर्तमान में सागरीय तलहटी से तेल गैस तथा अन्य खनिज भी निकाले जाने लगे अर्थात् सभी तथ्यों का समुचित विवेचन समुद्र विज्ञान की सहायता से आर्थिक भूगोल से संबंध हो सका है।

SPATTAL STRUCTURE OF THE ECONOMY

अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना – आर्थिक भूगोल में स्थानिक पक्ष का विशेष महत्व है इसकी प्रमुख समस्या सीमांकन की है। क्योंकि उत्पत्ति वस्तु स्थानीय क्षेत्रीय राष्ट्रीय भाषा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में जाती है सम्पन्न देश अन्य देशों के संसाधनों को लेने में समर्थ है विश्व अर्थव्यवस्था एकरूपता युक्त बंद हो सकती है किंतु अर्थव्यवस्था विभिन्न स्थानिक इकाइयों में विभक्त होती है तथा उनमें अंतर संबंध होता है स्थानिक संरचना के दो पक्ष कार्यात्मक एवं एकांगी होते हैं स्थानिक अर्थव्यवस्था के केन्द्र वृहद नगर एवं केन्द्रीय क्षेत्र होते हैं।

एक क्षेत्र के प्रत्येक भाषा में आर्थिक क्रियाओं का समग्र विकास होता है तो उनमें अंतर क्रिया न्यूनतम होती है किन्तु यदि एक क्षेत्र में उद्योग एक पशुपालन तो एक में खनिजों का विकास हुआ है जब कुछ उनमें समन्वय एवं पूरकता नहीं होगी अर्थव्यवस्था विकसित नहीं होगी यदि पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं होता तो क्षेत्रीय सम्बंधों के साथ प्रत्येक का एक क्षेत्र विकसित हो जाता है।

अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना

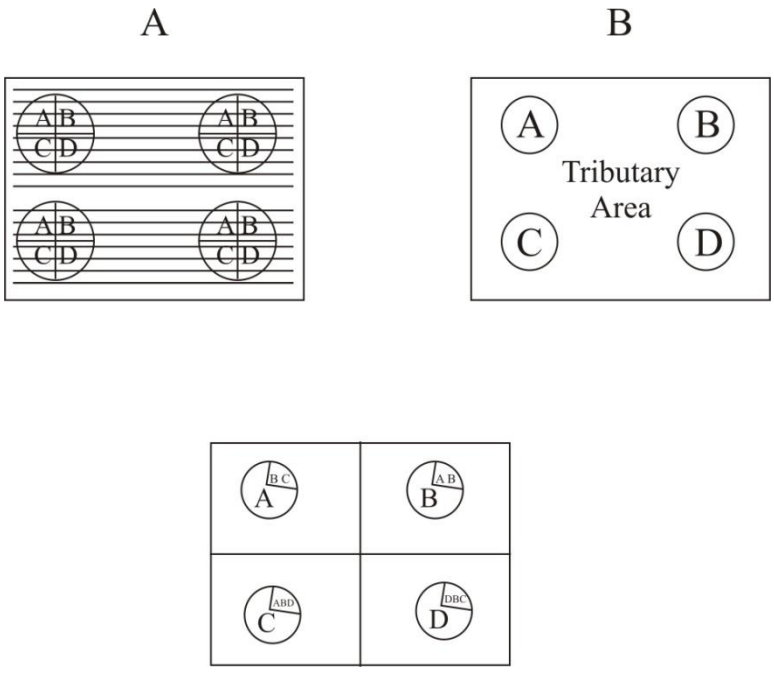

अर्थव्यवस्था की स्थानिक संरचना एवं स्थितिगत विशिष्टता

अ) इसे बंद अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है इसके अंतर्गत प्रत्येक नगर प्रदेश अपनी–अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करता है अर्थव्यवस्था के

चार प्रमुख खण्ड को एबीसीडी द्वारा अंकित किया गया है वस्तुओं और सेवाओं का आपसी विनिमय होता है जो उनके क्षेत्रीय प्रभाव क्षेत्र में सीमित है एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश में आदान प्रदान नहीं है तथा प्रत्येक दिशा अलग अर्थव्यवस्था युक्त है।

ब) दूसरा आरेख Open Economy को प्रदर्शित करता है यह एक दूसरे के पूरक हैं तथा सम्पूर्ण प्रदेश उनका पृष्ठप्रदेश है जिसने आपस में कोई अवरोध नहीं है इस व्यवस्था से आर्थिक विशेषीकरण अधिक लाभप्रद होता है।

स) यह कि आरेख मिश्रित अर्थव्यवस्था को दर्शाता है इसके अंतर्गत विशिष्टता का विकास हुआ है इसलिये ये एक दूसरे के पूरक है। इनके माध्यम से विश्व के देशों की अर्थव्यवस्था का भी विश्लेषण किया जा सकता है।

LOCATION OF ECONOMIC ACTIVITIES

आदिकाल से ही मानव अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अन्य क्रियायें करता रहता है जो अन्य आवश्यकतायें जैसे खाना पीना, सामाजिक व्यवस्थायें पूर्ण करता है मानव प्रारंभ से ही अपने को ऊँचा उठाने का प्रयास करता आ रहा है अर्थात् विकास की ओर अग्रसर है। इसी

प्रकार मानव ने कई प्रकार के उद्यमों का विकास किया और विकास के साथ–साथ क्रियाओं का विस्तार करता गया।

आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन आर्थिक भूगोल का प्रमुख पक्ष है आर्थिक क्रियायें भी अनेक प्रकार की होती है आर्थिक भूगोल में आर्थिक क्रियाओं को महत्व दिया जाता है।

Classification of Economies - sectors of (Primary, secondary teritory)

प्राथमिक आर्थिक क्रियायें – इन क्रियाओं के अंतर्गत मनुष्य की प्रारंभिक क्रियाओं को रखा जाता है जैसे कृषि करना, पशु पालन, आखेट करना, मत्स्य पालन। आदिकाल से ही मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इन सभी क्रियाओं को पूर्ण करता चला आ रहा है।

द्वितीयक आर्थिक क्रियायें – इसके अंतर्गत उत्पादन जैसी क्रियायें हैं जो प्राकृतिक संसाधनों में परिवर्तन कर उपयोग की जाती है इसके अंतर्गत खनन उद्योग, व्यापारिक, कृषि, पशु चारण आदि शामिल हैं।

तृतीयक आर्थिक क्रियायें – वे क्रियायें प्राथमिक व द्वितीयक क्रियाओं से भिन्न हैं इसमें परिवहन, व्यापार, बैकिंग, संचार के साधन कारखाने, लेखाकार, प्रबन्धक आदि तृतीयक आर्थिक क्रियाओं के अंतर्गत आते हैं।

चतुर्थ वर्ग की आर्थिक क्रियायें – शिक्षक, चिकित्सक, वकील, इंजीनियर आदि के कार्य इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं।

पंचम वर्ग की आर्थिक क्रियायें – यह क्रियायें अनुभवी व्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न होती है जो सलाह के द्वारा की जाती है कानून व प्राविधिक, वैज्ञानिक, शोध प्रबंध सम्बन्धी होती है।

ACTIVITIES क्रियायें –

अर्थव्यवस्था में कच्चे माल को कारखाने तक तथा उत्पादित माल को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिये सभी क्रियाओं को सम्पन्न कराया जाता है। एलेक्जेंडर और गिल्सन ने अपनी पुस्तक Economic (Geography) 1975 में आर्थिक क्रियाओं का वर्गीकरण आरेख द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं –

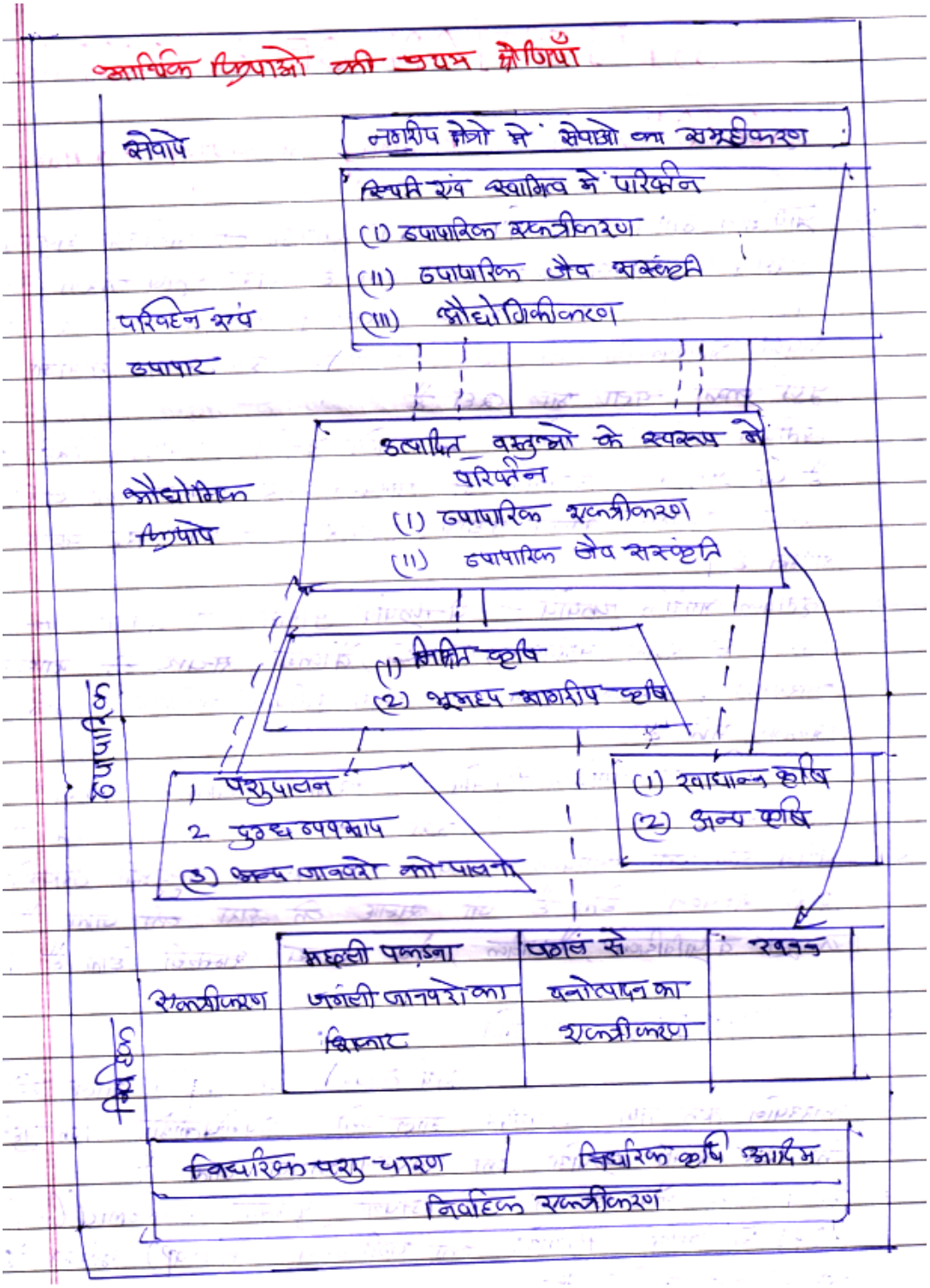

मानव की प्रमुख आर्थिक क्रियाओं को विकास के रूप में वर्णित किया गया है ये तथ्य सामान्य परिकल्पना द्वारा वर्जित किया गया है।

1. क्षेत्र में निम्न स्तरीय व्यापारिक विकास होने पर कृषि, मछली पालन एवं वनोत्पादन से अधिक अनुपात में लोग लगे होते हैं।

2. व्यापारिकरण के स्तर में वृद्धि के अनुपात में उपर्युक्त तीनों क्रियायें कम होने लगती हैं तथा व्यापार एवं परिवहन में क्रियाओं में वृद्धि होती है।

3. जैसे–जैसे व्यापारिक स्तर में और अधिक वृद्धि होकर तृतीय स्तर पर पहुँच जाती हैं तो औद्योगिक विकास अधिक होता जाता है।

4. अधिक व्यापारिक विकास और तीव्र गति से सेवाओं का विस्तार होता जाता है जिससे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का उच्चतर विकास होता जाता है।

प्रश्न – उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्न–

प्र.1 आर्थिक भूगोल का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।

प्र.2 आर्थिक भूगोल के विषय क्षेत्र का उल्लेख कीजिए।

प्र.3 आर्थिक भूगोल और अर्थशास्त्र के संबंध में प्रकाश डालिए।

प्र.4 आर्थिक भूगोल की अभिनव प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिये।

प्र.5 आर्थिक भूगोल की प्रकृति की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

प्र.1 आर्थिक भूगोल का अर्थशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिए।

प्र.2 आर्थिक भूगोल की प्रकृति तथा विषय वस्तु की व्याख्या कीजिए ?

सारांश – आर्थिक भूगोल मानव भूगोल की एक प्रमुख शाखा है इसके अंतर्गत आर्थिक क्रियाओं जैसे– एक स्थान से दूसरे स्थान पर पायी जाने वाली विभिन्नता का अध्ययन किया जाता है। भूगोल किसी

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को निर्धारित कर सकता है। प्रत्येक वस्तु का विश्व वितरण एवं उत्पादन का अध्ययन किया जाता है। इससे हम किसी विशेष क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियाँ के बारे में आसानी से अध्ययन कर सकते हैं।

Unit 2nd

1) **Economic Activities** - क्षेत्रों या व्यक्तियों की आर्थिक समृद्धि के बृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं नीति निर्माण की दृष्टि से आर्थिक विकास उन सभी प्रयत्नों को कहते हैं जिनका लक्ष्य किसी जन समुदाय की आर्थिक स्थिति व जीवन स्तर के सुधार के लिए अपनाये जाते हैं वर्तमान युग की सबसे महत्वपूर्ण समस्या आर्थिक विकास की समस्या है आर्थिक विकास को आर्थिक कारक प्रभावित करते हैं आर्थिक कारक वह है जो प्रत्यक्षः किसी देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं।

1. **प्राकृतिक संसाधन –** किसी भी देश का आर्थिक विकास प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करता है जैसे– यूएसए, चीन, रूस, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि।

2. **श्रम शक्ति व जनसंख्या –** बड़ी जनसंख्या विकास में बाथक भी है और सहायक भी है जैसे जब कार्यशील जनसंख्या का अनुपात बढ़ जाय और निर्भर जनसंख्या का अनुपात घट जाये श्रम शक्ति कहलाती है।

3. पूँजी निर्माण – किसी भी देश का आर्थिक विकास पूँजी की उपलब्धता पर निर्भर करता है जैसे– रोजगार का अवसर अधिक उत्पादन भी अधिक होता है।

पूँजी निर्माण की मुख्यतः तीन दशायें होती हैं।

अ) बचत

ब) बचत की गतिशीलता

स) विनियोग पूँजी

4. पूँजी उत्पाद अनुपात– इससे स्पष्ट है कि उत्पादन के लिये पूँजी की आवश्यकता होती है।

''उपलब्ध पूँजी का निवेश करने पर उत्पादन में किस दर से बुद्धि होती है उस देश में कम आर्थिक विकास होगा।''

5. तकनीकि तथा नवाचार – नवीन वस्तुओं के उत्पादन से पुरानी वस्तुओं की उत्पादन प्रक्रिया में सुधार हो तकनीकि तथा नवाचार कहलाता है। जैसे– वस्तुओं में सुधार होने से श्रम की उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है और उत्पादन लागत घट जाती है।

6. आधारभूत संरचना (Infrastructure) – आधारभूत संरचना सुविधाओं को प्रायः आर्थिक एवं सामाजिक अपरिव्यय कहते हैं इसके अंतर्गत ऊर्जा, संचार, रेल्वे, डाक तार विभाग, टेलीफोन, विज्ञान एवं तकनीकि आदि आते हैं।

आर्थिक कारकों को 5 भागों में विभक्त किया जा सकता है।

अ) प्राकृतिक कारक– स्वरूप के निर्धारण में वे तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ये प्राकृतिक तत्व स्थलाकृति, जलवायु, मिट्टी खनिज पदार्थ, वनस्पति और पशु प्रमुख है।

स्थलाकृति– किसी भी क्षेत्र का विकास उसकी जीविका को प्रभावित करता है पर्वतीय, पहाड़ी दोनों ही क्षेत्रों में मानव अलग अलग प्रकार से जीविका का निर्वाहन करता है पहाड़ी क्षेत्र समतल नहीं होता ऊँचा नीचा होने के कारण वहाँ के लोभ पट्टियाँ बनाकर फसल का उत्पादन करते हैं जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में भी मिलता जुलता ही है पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक खनिजों के भण्डार पाये जाते हैं खनिज पदार्थो के दृष्टिकोण से पर्वतीय क्षेत्र महत्वपूर्ण है यहाँ पर लकड़ी के उत्पादन से बने उद्योगों का विकास होता है।

जलवायु – जलवायु स्थलाकृति को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला प्राकृतिक कारक है जलवायु मानव जीवन को प्रभावित करती है ऊष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में चावल, गन्ना, नारियल, रबड़ आदि का उत्पादन जलवायु के द्वारा ही किया जाता है उसी प्रकार उपजाऊ मिट्टी वाले प्रदेश कृषि प्रधान देश है।

मिट्टी – कृषि के लिये मिट्टी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में विभिन्न प्रकार की कृषि व वनस्पतियाँ उगाई जाती है जहाँ पर कृषि के लिये उपजाऊ भूमि थी वहीं अधिकांश मानव नदी घाटियों में स्थित जलोढ़ मैदानों में ही विकसित हो गई।

खनिज पदार्थ – मनुष्य के जीवन में खनिजों का विशेष महत्व है खनिजों को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

अ) प्राकृतिक खनिज – कोयला, पेट्रोलियम, यूरेनियम

ब) औद्योगिक खनिज – लोहा, मैगनीज, चूना पत्थर

स) बहुमूल्य खनिज – सोना, चाँदी, हीरा, प्लेटिनम।

प्राकृतिक वनस्पति – मानव की अनेक आर्थिक क्रियायें जैसे पशु चारण, आखेट, उद्योग आदि का निर्धारण भी प्राकृतिक वनस्पतियों के

द्वारा ही होता है वन प्रदेशों में लकड़ी काटने और चीरने का उद्योग विकसित होता है घास के मैदानों में प्राप्त पशु चारण प्रचलित होता है।

पशु– मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं और पशु दोनों में गहरा सम्बन्ध है। विश्व में कई प्रकार के पशु पाये जाते हैं और मानव की विभिन्न आर्थिक क्रियाओं पशुओं द्वारा ही होती है।

आर्थिक कारक – किसी भी प्रदेश में पाये जाने वाले संसाधनों के प्रकार तथा उनके विदोहन की दशा आर्थिक विकास के स्तर आदि का आर्थिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव देखने को मिलता है जिन प्रदेशों में मिट्टी अधिक उपजाऊ तो वहां कृषि की प्रधानता होती है लोहा, बाक्साइट, तांबा आदि औद्योगिक खनिज की अधिकता वाले प्रदेशों में खनन व्यवसाय विकसित होता है।

सामाजिक कारक – सामाजिक कारकों में जाति, धर्म, आशा, आदि मानव को प्रभावित करते हैं प्रत्येक जाति वंशानुगत होती है प्राचीन काल से ही व्यवसायों की व्यवस्था वर्ण या जाति के अनुसार ही स्थापित हो चुकी है सामाजिक कारकों के आर्थिक क्रियाओं में कृषक, शिल्पकार, सेवा जातियाँ तथा भूमिहीन खेतीहर मजदूरों में विभक्त है।

सांस्कृतिक कारक – आर्थिक तथा तकनीकि रूप से विकसित देश सांस्कृतिक सम्पर्क प्रक्रिया के माध्यम से अल्प विकसित प्रदेशों में नवीन प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को विकसित करते हैं किसी देश की जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना के निर्माण में परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया के रूप में नगरीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

वैयक्तिक कारक – सामाजिलक व आर्थिक कारकों के बाद वैयक्ति कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अन्तर्गत लिंग, आयु, स्वास्थ्य, शैक्षणिक स्तर, प्रशिक्षण आदि सम्मिलित होते हैं। वैयक्तिक कारकों का सम्बंध मनुष्य की व्यक्तिगत समस्याओं से होता है।

आर्थिक क्रियाओं के निर्धारक
प्राकृतिक कारक
आर्थिक कारक
सामाजिक कारक
सांस्कृतिक कारक
वैयक्तिक कारक
स्थलाकृति
जलवायु
मिट्टी
खनिज पदार्थ
प्राकृतिक वनस्पति
पशु
a प्राकृतिक खनिज
b औद्योगिक खनिज
c बहुमूल्य खनिज
जाति
जनजाति
धर्म
भाषा
नगरीकरण
परिवहन
संचार
a लिंग
b आयु
c स्वास्थ्य
d. शैक्षणिक स्तर

AGRICULTURAL REGIONS

DEFINITION - ऐसे विस्तृत कृषि प्रदेश होते हैं जिसमें कृषि से सम्बन्धित विशेषताओं की समानता मिलती है यह समानता निकटवर्ती प्रदेश में भिन्नता रखती है। किसी विशेष कृषि प्रदेश में यह समरूपता, फसलों के प्रकार उत्पादन विधि, कृषि में प्रयुक्त उपकरण एवं प्रविधि तथा कृषकों की जीवन पद्धति एवं स्तर आदि के रूप में हो सकती है वो भिन्न कृषि प्रदेशों में भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक के कारण भी भिन्नता मिलती है यही कारक कृषि प्रदेशों के निर्धारण में मूल मानक होते हैं।

इस प्रकार कृषि प्रदेश समरूप या आकृतिक प्रदेश होते हैं जिसमें प्रत्येक लक्षणों की समरूपता मिलती है कृषि प्रदेश बहु विर्षण प्रदेश होता है कृषि प्रदेश एक ग्रीक संकल्पना है क्योंकि कृषि तथा प्रदेश दोनों ही समय के साथ परिवर्तनशील है इस कारण ही विभिन्न भूगोल वैक्ताओं ने अपने अनुसार भिन्न–भिन्न मानक अपनाकर कृषि प्रदेशों का निर्धारण करते हैं –

बुचानन के अनुसार– शस्य शस्य साहचर्य (Crop Combination) पशु पावन साहचर्य आदि मापदण्डों के आधार पर कृषि प्रदेशों का

सीमांकन किया जाना चाहिए अतः परिवर्तनशील स्वरूप में पृथ्वी का कोई भाग जहाँ कृषि का एक विशिष्ट रूप में मिलता है एक कृषि प्रदेश कहलाता है।

व्हीटलसी के अनुसार– कृषि प्रदेश ऐसे विस्तृत क्षेत्र होते हैं जहाँ फसलों की किस्सों तथा उनकी उत्पादन विधि में समरूपता मिटाती है साथ ही कृषि भूमि उपयोग में विशिष्टताजन्य सम्बद्धता मिलती है।

कृषि प्रदेशों का सीमांकन – Limitation of Agricultural Regional कृषि प्रदेशों को निर्धारित करने के लिये फसल, पशु साहचर्य, कृषि की विधियाँ आदि को समाहित किया जाता है ब्रेकर 1926 ने कृषि प्रदेशों के प्राकृतिक कारकों को आधार माना इसके विपरीत व्हीटलशी एवं हॉटशार्न 1936 तथा डिफेन ने 1935 ने आर्थिक कारकों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया।

विश्व के कृषि प्रदेशों को सीमांकन करने में हंटिग्टन, जानसन, बेकर तथा व्हीटलशी के कार्य अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं।

हंटिगन के अनुसार– प्राकृतिक पर्यावरण कारकों के आधार पर विश्व चार कृषि परिमण्डलों में विभाजित है ये कृषि परिमण्डल निम्न हैं–

प्रथम परिमण्डल में वे क्षेत्र सम्मियत है जो कृषि के लिये सर्वथा अनुपयुवक है इनमें टुण्ड्रा तथा अन्य हिमाच्छारित क्षेत्र, उच्च पर्वतीय क्षेत्र तथा उष्ण मरूस्थल मुख्य है।

द्वितीय वर्ग में कृषि के लिए अनुपलब्ध क्षेत्रों को सम्मिलित किया है जो कृषि के योग्य है लेकिन उपलब्ध नहीं है जैसे विषुवत रेखीय वर्षा वन, टैगा वन आदि।

तृतीय वर्ग में अनिरचित कृषि वाले क्षेत्र जिनमें निम्न अक्षांशीय आर्द्र एवं शुष्क प्रदेश, मानसून प्रदेश।

चतुर्थ वर्ग में कृषि के लिए अनुकूल दशाओं वाले क्षेत्र जिनमें पश्चिमी यूरोपीय जलवायु तथा अमेरिकी महाद्वीपीय जलवायु मध्य अक्षांशीय, पूर्वी तटीप जलवायु तथा भूमध्य सागरीय जलवायु को सम्मिलित किया जाता है।

जॉनसन के अनुसार– विश्व को अनुकूल और विषम प्राकृतिक दशाओं के आधार पर पाँच (जीवन, मृत्यु) कृषि प्रदेशों में विभाजित किया जाता है।

1. उष्ण कटिबन्धीय जीवन प्रदेश

2. उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्धीय मृत्यु प्रदेश या मरूस्थल

3. उपोष्ण कटिबन्धीय प्रदेश या भूमध्य सागरीय प्रदेश

4. शीतोष्ण कटिबन्धीय जीवन प्रदेश

5. ध्रुवीय मृत्यु प्रदेश

कृषि का प्रादेशिक सीमांकन करने के लिये सैद्धांतिक से लेकर अनुभाविक, विवरणात्मक तथा सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया जाता है ये विधियाँ निम्नलिखित हैं।

1. आदर्शी विधियाँ – बॉन थ्यूनेन का 1826 का संकेन्द्रीय वृत खण्ड अग्रणी है इसमें एक समान भागौलिक दशाओं वाले उर्वर मैदान की कल्पना की गई है। थ्यूनेन के आधार पर 1925 में जानसन ने यूरोपीय कृषि व्यवस्था का निर्धारण किया ई.एम. हूबर ने भी सन् 1948 में आदर्शी सिद्धांत का प्रयोग किया।

2. आनुभाविक विधियाँ (Empircal Techaniques) – इस विधि में व्यक्तिगत अनुभवों का उपयोग करके कृषि प्रदेश विरचित किये

जाते हैं इन विधियों का प्रयोग ओ.ई.बेकर (1926–33) जानसन (1923–26), सी.एफ. जॉन्स (1926–30) जी टेलर 1930 तथा एस.बी. बाल्केवर्ग 1931–36 द्वारा किया गया इसमें ब्रेकर अग्रणी है उन्होनें अपने अनुभव के आधार पर आर्थिक कारकों की व्याख्या की है उनके विचार में कृषि प्रदेश ऐसा होता है जहाँ कृषि सम्बन्धी दशाऐं समान पायी जाती हैं जो जलवायु पर निर्भरता रखती है।

3. सांख्यिकीय विधियाँ – अनुभव तथा निरीक्षण पर आधारित विधियों का स्थान सांख्यिकीय विधियों ने लिया है इसका उपयोग सांख्यिकीय सिद्धांतों के द्वारा किया जाता है। इन विधियों में प्रयुक्त कारकों के आधार पर तीन प्रकार के कृषि प्रदेश सीमांकित किये जाते हैं जो निम्न है।

(i) एक तात्विक विधि – एक ही तत्व को आधार मानकर कृषि प्रदेश का निर्धारण किया जाता है जिसमें फसलों के सन्द्रेण के अनुसार प्रमुख तथ्य निर्धारित कर लिये जाते हैं जैसे– अमेरिका में कपास पेटी या मक्का पेटी इसी आधार पर निर्धारित किये गये हैं।

(ii) बहुतात्विक विधि – इस विधि में कृषि प्रादेशीकरण कई मापदण्डों के आधार पर किया जाता है।

अ) भूमि क्षमता प्रदेश

ब) भू जोत तंत्र

स) कृषि तंत्र प्रदेश

द) प्रकार्यात्मक प्रदेश

व्हीट्लसी के अनुसार विश्व के कृषि प्रदेश –

Agricultural Regions of the World According to Writtlesey -

सन 1936 में व्हीटैलसी ने विश्व के कृषि प्रदेशों के सीमांकन का कार्य किया इन्होनें कृषि प्रदेशों के सीमांकन हेतु नि.लि. पाँच आधारों को अपनाया।

1. कृषि फसलों एवं पशुओं का पारस्परिक सम्बंध

2. कृषि उत्पादन तथा पशुपालन विधियाँ

3. कृषि में पूँजी, श्रम संगठन आदि के विनियोग की मात्रा

4. कृषि उत्पादन के उपभोग का स्वरूप

5. कृषि उत्पादन में प्रयुक्त तंत्र एवं उपकरण तथा आवास सम्बंधी दशायें

1. कृषि फसलों एवं पशुओं का पारस्परिक सम्बंध – कृषि का तात्पर्य फसलों के उत्पादन एवं पशुओं से है दोनों ही कृषि के लिये पारस्परिक सम्बंध को दर्शाता है भूमि के अनुकूलतम उपयोग के लिए फसलों एवं पशुओं का साहचर्य आवश्यक होता है भिन्न–भिन्न प्रदेशों में यह साहचर्य भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है।

2. कृषि उत्पादन तथा पशुपालन विधियाँ – विभिन्न क्षेत्रों में कृषि उत्पादन की विधियों की भिन्नता के कारण भी कृषि दशाओं की प्रादेशिक समानता एवं प्रादेशिक सम्बद्धता को दर्शाता है।

उदाहरण– किसी क्षेत्र में कृषि उत्पादन में पशुओं तथा हल का प्रयोग होता है कहीं क्षेत्रों में सिंचित कृषि होती है तो कहीं असिंचित कृषि।

3. किन्हीं क्षेत्रों में कृषित भूमि पर पूँजी का अधिक विनियोग होता है तो कहीं श्रम या दोनों का ही अधिक उपयोग किया जाता है।

4. कृषि उत्पादन के उपभोग का स्वरूप– यदि कृषि उत्पादन व्यापार के लिए किया जाता है तो वहाँ विस्तृत कृषि द्वारा विशेषीकरण वाली

कृषि होती है किंतु यदि उत्पादन कृषक के निजी उपभोग के लिए किया जाता है तो वहाँ निर्वाहक कृषि होती है।

5. कृषि उत्पादन में प्रयुक्त तंत्र एवं उपकरण तथा आवास सम्बंधी दशाऐं– प्रयुक्त यंत्र, उपकरण तथा आवास संबंधी दशाओं से विभिन्न यंत्रों में भिन्न प्रकार के कृषि भू दृश्य विकसित होते हैं।

व्हीट्लसी ने उपरोक्त आधार तत्वों के अनुसार– विश्व को 13 कृषि प्रदेशों में वर्गीकृत किया है।

(1) चलवासी पशु चारण प्रदेश

(2) व्यापारिक पशुपालन प्रदेश

(3) स्थानान्तरण कृषि प्रदेश

(4) प्रारम्भिक स्थानबद्ध कृषि प्रदेश

(5) चावल प्रधान गहन निर्वाह कृषि प्रदेश

(6) चावल विहीन गहन निर्वाह कृषि प्रदेश

(7) व्यापारिक बागानी कृषि प्रदेश

(8) भूमध्य सागरीय कृषि प्रदेश

(9) व्यापारिक अन्नोत्पादन कृषि प्रदेश

(10) व्यापारिक फसल एवं पशु उत्पादन कृषि प्रदेश

(11) निर्वाहक फसल एवं पशु उत्पादन कृषि प्रदेश

(12) व्यापारिक दुग्ध पालन कृषि प्रदेश

(13) विशेषीकृत वागवानी या उद्यान कृषि प्रदेश।

व्हीट्लसी के वर्गीकरण के दोष–

1. कुछ आलोचकों के अनुसार– व्हीट्लसी का वर्गीकरण वस्तुगत विश्लेषण पर आधारित न होकर व्यक्तिगत विश्लेषण पर आधारित है वस्तुगत विश्लेषण ऐसे तत्वों पर आधारित होना चाहिए जो सांख्यिकीय रूप से मापनीय हो।

2. वर्गीकरण में प्रयुक्त संस्थागत सांस्कृतिक, अवसंरचनात्मक तथा राजनीतिक कारक स्थिर न होकर परिवर्तनशील है जो स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अर्न्तराष्ट्रीय दशाओं में बदलते हैं विकासशील देशों में ये परिवर्तन क्रांतिकारी होते हैं जबकि विकसित देशों में यह सामान्य प्रकृति के रूप में मिलते हैं।

व्हीट्लसी के वर्गीकरण के गुण एवं दोष –

गुण –

1. व्हीट्लसी का कृषि पद्धतियाँ वर्गीकरण कृषि की दर्शनीय विशेषताओं पर आधारित है।

2. यह विश्व की प्रमुख कृषि पद्धतियों का वर्गीकरण एवं वर्णन प्रस्तुत करता है।

3. व्हीट्लसी ने विभिन्न कृषि प्रदेशों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये एक मानचित्र भी प्रस्तुत किया है।

4. व्हीट्लसी का वर्गीकरण कृषि भू दृश्यों की उन दर्शनीय विशेषताओं पर आधारित है जिसके आंकड़े सहज उपलब्ध हैं।

5. व्हीट्लसी का वर्गीकरण एक ढाँचा प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर कृषि ने पुनः सूक्ष्म उप विभाजन किये जा सके।

गुण, दोषों के आधार पर व्हीट्लसी के कृषि प्रदेशों का विभाजन सर्वाधिक मान्य है इसमें थोड़ा परिवर्तन कर इसे अपना लिया है।

1. **चलवासी पशुचारण–** ऐसे कृषि प्रदेश जहाँ वर्षा कम होती है शीत के कारण फसलों का उत्पादन न के बराबर है इसलिये इस क्षेत्र का मुख्य व्यवसाय पशु पालन है यहाँ की खिरमीज, मसाई, बद्दू एवं लैप्स आदि खानाव दोष जातियाँ इस कार्य में लगी हुई हैं। इनका खान पान, रहन सहन सभी कुछ पशुओं पर ही आधारित होता है इनके हथियार, आर्थिक तंत्र आदि सभी पशुओं पर आधारित है मरूस्थल में ऊँट, अर्थ शुष्क क्षेत्रों में बकरी भेड़ आदि प्रदेशों में में गाय, टुण्ड्रा प्रदेशों में रैडियर, तिब्बत में याक पशु पाये जाते हैं।

2. **वितरण–** उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य पूर्व तथा मध्य एशिया के शुष्क तथा आर्द्र शुष्क भागों में प्रचलित है मध्य एशिया में कैस्पियन सागर से लेकर मंगोलिया तथा उत्तरी चीन तक खिरगीज, कज्जाक एवं कात्मुख प्रमुख चलवासी पशुचारक में।

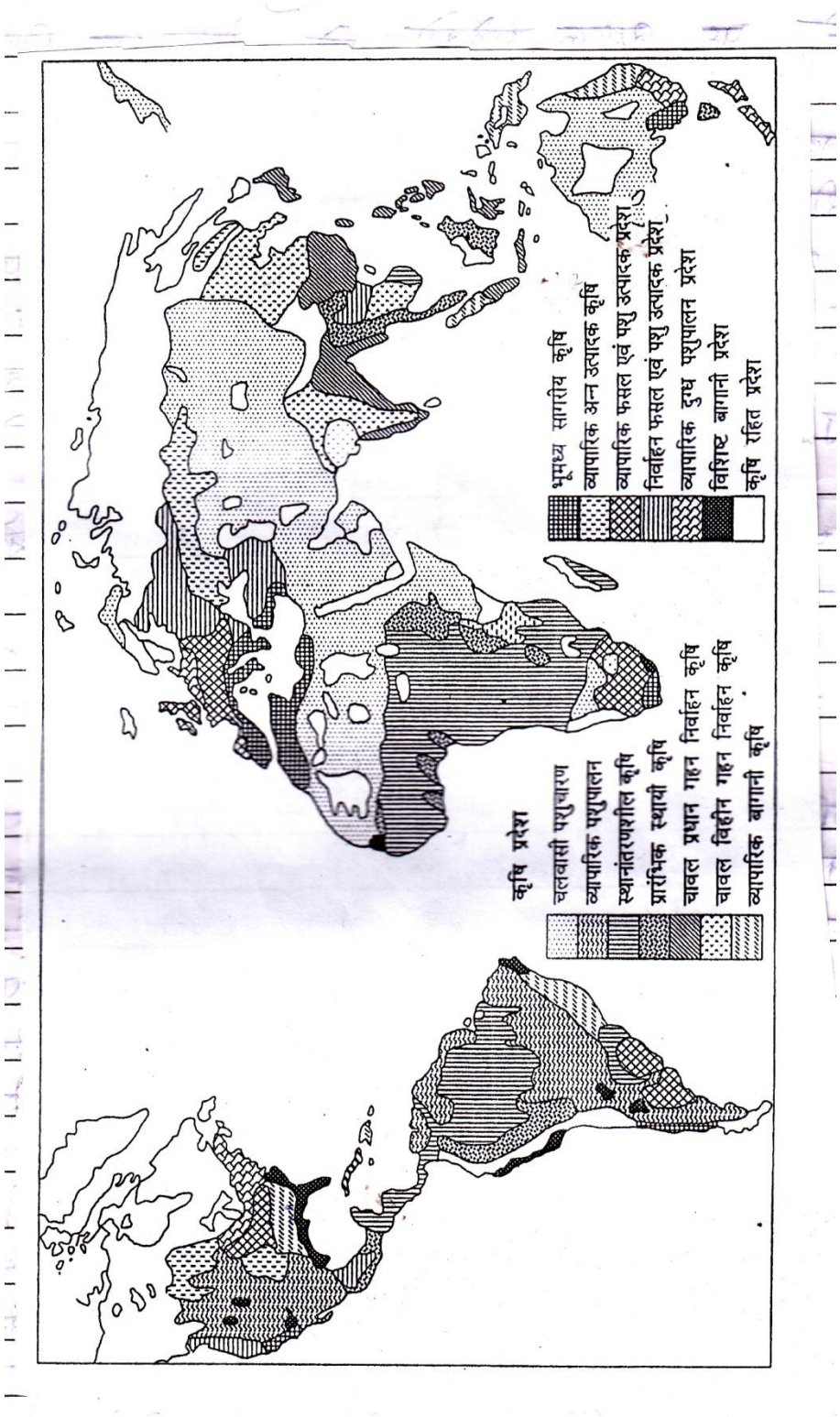

विशेषतायें चलवासी पशुचारण– चलवासी पशुचारण बहुत पुरानी पद्धति है इसने मानव पशुओं पर ही आश्रित रहता है यह शुष्क प्रदेशों के

दोहन का निर्वाहक भी है इसमें पशु झुण्ड में वनस्पतियों को चरते हैं। इन पशुओं से भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था होती है उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य पूर्व में ऊँट सबसे उपयुक्त पशु है ऊँट शुष्क जलवायु में सर्वाधिक समायोजित पशु है यह जल के बिना कई दिनों तक रह सकता है। बकरियाँ मजबूत तथा गतिशील पशु है जो कठोरतम वातावरण में रह सकती है भेड़े मजबूत पशु जो थोड़े से जल पर ही आश्रित रह सकती है।

प्रत्येक परिवार के पोषण के लिये पशुओं की सरैया विशिष्ट वर्ग तथा पशु पर निर्भर होती है।

वितरण– पशु पालन के प्रमुख क्षेत्र पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको, फभडा, दक्षिण अफ्रीका के कारू आदि है।

यह प्रक्रिया बड़े स्तर पर होती हैं पशुपालन करने वाले क्षेत्रों में कार्म बनाये जाते हैं जिससे यह अन्य जंगली जानवरों से सुरक्षित रह सके इनके अंतर्गत बकरी, भेड़, ऊँट, गाय, घोड़े आदि पशु आते हैं पशुओं का चयन वहाँ की जलवायु स्थिति को देखकर किया जाता है। पर्याप्त भोजन उपलब्ध होने के कारण यह स्थान स्थान पर भटकते नहीं है।

3. स्थानान्तरित कृषि Shifting Agricultural -

इस प्रकार की कृषि अधिकतर आर्द्र, उष्ण कटिबन्धीय भागों दक्षिणी अमेरिका में अमेजिन बेसिन, मध्य अमेरिका, मध्य अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका, मध्य अफ्रीका तथा दक्षिणी पूर्वी ऐशियाई द्वीपों के आन्तरिक क्षेत्रों में की जाती है इसे असम में झूम, मलेशिया एवं इफोनेशिया में लद्दाख फिसीपीन्स में कैंगी की संख्या में चेना, रोडेशिया में निल्पा सूडान में नगासू आदि विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता है अमेरिका, मध्य अफ्रीका तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया में स्थानान्तरित कृषि की जाती है विश्व के भिन्न क्षेत्रों में इसे निम्न नामों से पुकारा जाता है जैसे– मध्य अफ्रीका में मसोले बालागासी में टेवी मध्य अमेरिका में मिल्पा।

स्थानांतरित कृषि की मुख्य विशेषतायें कृषक वनों को जलाकर भूमि साफ करते हैं और कई सालों तक कृषि करते हैं उसी प्रकार दूसरी ओर कई सालों तक भूमि को साफ करके छोड़ दिया जाता है, ये कृषक निकटवर्ती क्षेत्रों में रहते हैं और कृषि करते हैं कृषि के लिये पहाड़ी स्थानों को चुना जाता है पहाड़ों पर वृक्षों को कुल्हाड़ी से काट

दिया जाता है जिसे कृषि करने योग्य भूमि बन जाती है कृषि वाले क्षेत्र बहुत छोटे होते हैं या पहाड़ी पर होने के कारण बिखरे होते हैं।

एक ही क्षेत्र पर अनेक फसलें बोई जाती है जैसे कि झाड़ीदार फसलें जड़दार फसलें।

एक बार साफ की गई भूमि पर 2, 3 साल तक खेती की जाती है और फसलें उगाई जाती है इसके बाद मिट्टी की उर्बरता तेजी से घटने लगती है उसके बाद उस भूमि को छोड़ दिया जाता है और उस पर वनस्पति उग जाती है कई सालों बाद पुनः कृषि की जाती है इस विधि को field rotation हेरफेर कहते हैं।

4. प्रारंभिक स्थानबद्ध कृषि–

इस प्रकार की कृषि उन क्षेत्रों में की जाती है जहां स्थानान्तरणशील कृषि होती है जहाँ प्राकृतिक दशायें अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल मिलती है वहाँ स्थानान्तरणशील कृषि स्थाई कृषि में बदल जाती है यहाँ पर प्राकृतिक सुविधायें अधिक होती है और जनसंख्या की पर्याप्त मिलती है यहाँ धान की खेती, मसाले की खेती की जाती हे। इसे गहन कृषि भी कहते हैं। इसकी मुख्य विशेषतायें यह है कि वे स्थानांतरित कृषि

में field rotation को महत्व दिया जाता है लेकिन प्रारंभिक स्थानबद्ध कृषि में फसलों के हेरफेर को प्राथमिकता दी जाती है। (Crop Rotation) इसमें सारा कार्य हाथ से किया जाता है जड़ पर तथा अन्य फसलें जैसे– आलू, सकरकंद, कसावा आदि है इसके अलावा तेल, नारियल, रबड़ की भी खेती की जाती है।

इसके अलावा ये लोग स्थायी बस्तियों में निवास करने लगे हैं और पशुओं द्वारा कृषि का कार्य करने लगे हैं। कुछ अन्य क्षेत्रों में विकास हुआ है और ये कृषक उन्नत् फसलों के लिये यांत्रिक ऊर्जा तथा अनेक नई तकनीकियों के विकास पर बल देने लगे हैं।

4. चावल प्रधान गहन निर्वहन कृषि– इस प्रकार की कृषि के लिये आदर्श भौगोलिक दशाओं का होना आवश्यक है इस क्षेत्र में गहन कृषि की जाती है–

इस प्रकार की कृषि (चावल प्रधान) मानसून वाले क्षेत्रों में की जाती है जहाँ पर विश्व की अधिकतम जनसंख्या निवास करती है इसके प्रमुख क्षेत्र, उत्तरी वियतनाम् में टोफिंग डेल्टा, कम्बोडिया में मलंग नहीं का निचला मैदान, भारत में गंगा, ब्रहमपुत्र डेल्टा तथा उड़ीसा एवं आन्ध्र प्रदेश के तटीय मैदान सम्मिलित है।

ये सभी प्रदेश चावल का कटोरा Rice Bowls के नाम से भी जाने जाते हैं।

इनकी प्रमुख विशेषतायें – ये छोटे आकार के होते हैं और छोटे के साथ साथ बिखरे हुये भी हैं खेती बहुत सघन होती है कृषि योग्य भूमि पर पशुओं को भी चराया जाता है और लोहे का हल मुख्य उपकरण है और खेती पर अधिक (हाथ से) बल दिया जाता है कि कृषि हाथों के माध्यम से हो जैसे– रोपाई के समय हाथ से शेपड़, फसल काटने तथा अन्य कार्यों में हँसियों का उपयोग किया जाता है।

6. चावल विहीन गहन निर्वाहन कृषि– यह क्षेत्र 150 सेमी. से भी कम वर्षा वाले होते हैं इन क्षेत्रों में गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा, तिलहन आदि फसलें उगाई जाती हैं इसमें उत्पादन का मुख्य लक्ष्य क्षैत्रीय जीवन निर्वाहन है कृषि के लिये ग्राम मानव व पशुओं पर आधारित है पशुओं से दूध तथा माँस प्राप्त किया जाता है इस प्रकार की कृषि दक्षिणी पूर्वी एशिया के सम्पूर्ण मानसूनी क्षेत्रों जैसे– चीन, भारत, जापान, कोरिया, थाइलैण्ड म्यामांर तथा पाकिस्तान में ताइवान, फिलीपाइन्स द्वीप समूह, सुमात्रा जावा, लाओस व वियनतनाम के कुछ भागों में है।

इनकी मुख्य विशेषता वर्षा मानसूनी हवाओं के द्वारा होती है, मानसूनी क्षेत्रों के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में चावल, कम वर्षा वाले क्षेत्रों में गेहूँ की फसल उगाई जाती है। कृषि के लिये इन क्षेत्रों में सिंचाई की आवश्यकता होती हे।

7. व्यापारिक बागाती कृषि (Commercial Plantation Agriculture)– बागाती फसले बड़े–बड़े क्षेत्रों में उगाई जाती है वृक्षों से दूध निकालने का कार्य श्रमिकों के माध्यम से ही किया जाता है इसमें चाप के बागान, गन्ने की खेती प्रमुख है बड़े–बड़े कार्यो में भी कृषि की जाती है।

इन क्षेत्रों की मुख्य विशेषतायें है कि एक क्षेत्र में एक ही फसल का विशेषीकरण पाया जाता है जैसे– चाय भारत एवं श्रीलंका में कहवा ब्राजील एवं कोलम्बिया में, केला–लेटिन अमेरिका गन्ना–क्यूवा ब्राजील का उत्पादन होता है।

इन फसलों की एक बहुत की समस्या है कि चक्रवात, अफाल, पाला, कीड़े–मकोड़े, विषाणु के कारण फसलों को काफी नुकसान होता है कभी–कभी तो पूरी ही नष्ट हो जाती है।

8. भूमध्यसागरीय कृषि (Mediterranean Agriculture)– इस प्रकार की जलवायु 30^0–40^0 उत्तरी अक्षांश एवं दक्षिणी अक्षांश के मध्य की होती है। इस प्रकार के जलवायु वाले क्षेत्रों में कृषि और व्यापार दोनों ही किये जाते हैं। कृषि में विशिष्ट फसलों का उत्पादन होता है जैसे– गेहूँ, जो तथा सब्जियों का उत्पादन। कुछ रसदार फल जैसे जैतून तथा अंगूर का उत्पादन मुख्यतः निर्यात के लिये किया जाता है अतः हम कह सकते हैं कि भूमध्यसागरीय भूमि को फलोधान भूमि कहा जाता है एवं विश्व के शराब उद्योग का छाप भी कहा जाता है।

इसकी मुख्य विशेषतायें – मौसमी वर्षा से खाद्यान्न एवं सब्जी का उत्पादन होता है सिंचाई के बिना ही अंगूर, जैतून फलों का उत्पादन किया जाता है। स्थानीय दशायें निश्चित करती है कि क्षेत्र में कौन सी फसल उगायी जायेगी कृषि सघन एवं विस्तृत होने प्रकार की होती है।

9. व्यापारिक अन्नोत्पादन कृषि– इस प्रकार की कृशि कम वर्षा या शुष्क क्षेत्रों में की जाती है यह मध्य अक्षांशों के मध्य स्थित है।

यह बड़े पैमाने पर सयुंक्त राज्य अमेरिका कनाडा, पूर्व सोवियत संघ, अर्जेन्टाइना तथा आस्ट्रेलिया में विकसित है।

इसकी मुख्य विशेषतायें – यह बहुत बड़े क्षेत्रों में जैसे कार्यो में की जाती है यहाँ गेहूँ प्रमुख उपज है जौ फलेवस तथा मक्का भी उगाये जाते हैं कृषि यंत्रीकृत है तथा उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है कई फलों में उत्पादक क्षेत्र बाजारों से दूरी बनाते जा रहे हैं यह जनसंख्या के कारण ही हुआ है।

10. व्यापारिक पशुपालन एवं फसल उत्पादन कृषि– इस प्रकार की कृषि में पशुपालन एवं फसल का उत्पादन दोनों ही एक साथ किये जाते हैं इस प्रकार की कृषि शीतोष्ण कटिबन्धीय यूरोप के उत्तरी पूर्वी भाग तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में पाया जाता है।

उत्तरी अमेरिका में सीमित फार्म हाउस होते हैं जो ठपविकगत (निजी) होते हैं।

इन क्षेत्रों में मिश्रित प्रकार की कृषि की जाती है। मिश्रित कृषि में उपकरणों तथा मशीनों के लिये रोड तथा पशुओं को रहने के लिये सथान, वाडा आदि का इंतजाम किया जाता है।

इनकी मुख्य विशेषता है कि फसलों के हेरफेर के कारण मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है।

रोगों, फसलों के विनाश तथा जलवाष्वीय प्रकोपों से किसानों को अधिक हानि नहीं होती।

11. निर्वाहक पशुपालन एवं फसल उत्पादन कृषि– इस प्रकार की कृषि में कृषक अपने उपयोग के लिये ही फसल का उत्पादन करता है कृषि आधुनिक यंत्रों तथा मशीनरी के माध्यम से होती है ये कृषि से ही अपना जीवन निर्वाहन करते हैं।

इनकी मुख्य विशेषतायें फसलों को उगाने तथा घटिया नस्लों के पशु पालने में पुरानी विधियाँ ही अपनाई जाती है गेहूँ तथा जौ प्रमुख खाद्यान्न है।

12. व्यापारिक दुग्ध पालन कृषि (Commercial Dairy Farming)– यह सबसे उन्नत प्रकार की कृषि की जाती है इसमें कृषि के बजाय पशु पालन पर विशेष महत्व दिया जाता है। मुख्यतः भेड़ बकरियाँ गाय भैंस बैल आदि पशु पाले जाते हें। आस्ट्रेलिया के दक्षिणी–पूर्वी भाग तथा न्यूजीलैण्ड का उत्तरी द्वीप है। इनके अतिरिक्त गौण क्षेत्र पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्वी अर्जेन्टीना, मध्य चीन, पूर्वी जापान तथा पश्चिमी रूस है। विश्व के 90 प्रतिशत दूध का उत्पादन इन्हीं प्रदेशों से किया जाता है।

CROP COMBINATION -

शस्य संयोजन – शस्य संयोजन का तात्पर्य किसी क्षेत्रीय इकाई या श्वेत में एक वर्ष में उगाई जाने वाली फसलों के ब्राहचर्य से है अतः किसी क्षेत्रीय इकाई में उत्पन्न की जाने वाली प्रमुख फसलों के समूह को शस्य संयोजन कहते हैं किसी क्षेत्र में एक से अधिक फसलें उगायी जाती हैं उनमें एक फसल या कुछ फसलें प्रमुख होती है। उनके साथ कुछ अन्य फसलें भी उगायी जाती है। उदाहरण के लिये किसी फसल की मुख्य फसल गेहूँ है तो उसके साथ कुछ अन्य फसलें भी उगायी जायेगी उसे ही Crop Combination कहते हैं।

किसी क्षेत्र में फसल प्रतिरूप तथा शस्य संयोजन का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण होता है। किसी एक फसल की तुलना में फसलों के समूह का अध्ययन अधिक सार्थक तथा महत्वपूर्ण होता है जिन क्षेत्रों में एक से अधिक फसलें उगायी जाती है वहाँ शस्य संयोजन महत्वपूर्ण होता है।

‘‘सामान्य शस्य संयोजन के आधार पर सीमांकित कृषि प्रदेश को शस्य संयोजन प्रदेश कहा जाता है।’’

महत्व के आधार पर कृषि प्रदेश एक फसल, द्विफसली, त्रिफसली, चार फसली आदि कई प्रकार हो सकता है।

शस्य संयोजन निर्धारण की विधियाँ –

शस्य संयोजन की निर्धारण की विधियों में बीवर की विधि सबसे महत्वपूर्ण है इसके अलावा कई विद्वानों ने भी अपनी विधियों को स्पष्ट किया।

बीवर की विधि (Weaver's Method) – 1954 शस्य संयोजन में अमेरिकी भूगोल वेवक्ता जे.सी. बीवर को अग्रणीय माना जाता है।

बीवर के अनुसार– यदि किसी क्षेत्र में एक ही फसल उगायी जाती है तथा शत–प्रतिशत कृषित भूमि एक ही फसल के अंतर्गत मानी जायेगी यदि किसी क्षेत्र में दो फसलें बोई जाती हैं तो प्रत्येक का हिस्सा 50 प्रतिशत होगा इस प्रकार तीन फसलें होने पर प्रत्येक का हिस्सा 33. 3 होगा जबकि चार फसलें होने पर प्रत्येक का हिस्सा 20 प्रतिशत होगा। इसी नियम के अनुसार यदि 10 फसलें उगायी जायेगी तो प्रत्येक का हिस्सा 10 प्रतिशत होगा। सैद्धांतिक स्थिति की तुलना वास्तविक स्थिति से करके शस्य संयोजन का निर्धारण किया जाता है।

बीवर ने शस्य संयोजन के सैद्धांतिक प्रतिशत क्षेत्रफल में से फसल के वास्तविक प्रतिशत क्षेत्रफल को घटाकर दोनों का अंतर (विचलन) ज्ञात किया और इन विचलनों की गणना की ‘‘मानक विचलन के वर्ग को प्रसरण कहते हैं’’

प्रसरण (Variance) $= \frac{\sum d^2}{N}$

जबकि, d = विचलन (सैद्धांतिक और वास्तविक अन्तर)

उदाहरण –

फसल	गेहूँ	चना	जौ	कपास	गन्ना
दो हजार हेक्टेयर	74	58	28	24	16
कुल कृषित भूमि	37	29	14	12	8

का प्रतिशत

शस्य संयोजन के लिये प्रसरण की गणना निम्न प्रकार की जावेगी।

1. एकल फसल $= \frac{(100-37)^2}{1} = \frac{63^2}{1} = 3969$

2. दो फसल संयोजन $= \frac{(50-37)^2+(50-29)^2}{2} = \frac{610}{2} = 305$

3. तीन फसल संयोजन=$\frac{(33.3-37)^2+(33.3-29)^2+(33.3-14)^2}{3}$ = $\frac{404.7}{3} = 135.29$

4. चार फसल संयोजन = $\frac{(25-37)^2+(25-29)^2+(25-14)^2(25-12)^2}{4}$

$$= \frac{450}{4} = 112.5$$

5. पाँच फसल संयोजन = $\frac{(20-37)^2+(20-29)^2+(20-14)^2+(20-12)^2(20-8)^2}{5}$

$$= \frac{614}{5} = 122.8$$

इस विधि में न्यूनतम प्रसरल 112.5 है जो चार फसलों वाले संयोग के लिये है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन – बीवर ने अपना यह प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका में किया वहां पर खेत का आकार समान होता है परंतु अन्य देशों में समानता नहीं होती क्योंकि वहाँ गहन कृषि की जाती है अतः गहन कृषि क्षेत्रों में बीवर की विधि अधिक उपयुक्त नहीं है। बीवर ने सभी फसलों को समान महत्व दिया जो व्यावहारिक नहीं

था। बीवर ने शस्य संयोजन से फसलों को ही अधिक महत्व दिया पशु पालन को नहीं अनेक देशों में पशु पालन को भी वरीयता दी जाती है।

2. दोई की विधि (Doi's Method)– 1959 दोई ने जो अपनी विधि को बताया वह बीवर का ही संशोधित, रूप है दोई ने शस्य संयोजन के निर्धारण हेतु कृषित क्षेत्र के सैद्धांतिक प्रतिशत और वास्तविक प्रतिशत के विचलनों का वर्गो के कुल योग $(\sum d^2)$ को आधार बनाया इसके लिये प्रसरण $(\sum d^2/N)$ को आधार माना था।

बीवर की भांति दोई की भी मान्यता है कि कृषित भूमि सभी फसलों में समान रूप से वितरित है दोई के विधि का आधार भी आर्थिक है।

बीवर की विधि के विश्लेषण हेतु प्रयुक्त उदाहरण को ही लें तो दोई के अनुसार विभिन्न फसल संयोगों के लिये विचलनों के वर्ग का योग $(\sum d^2)$ की गणना इस प्रकार की जावेगी।

1. एकल फसल $= (100 - 37)^2 = 3969$

2. दो फसल संयोग $= (50 - 37^2) + (50 - 29)^2 = 610$

3. तीन फसल संयोग $= (33.3 - 37)^2 + (33.3 - 29)^2 + (33.33 - 14^2) = 405.87$

4. चार फसल संयोग $= (25 - 37)^2 + (25 - 29)^2 + (25 - 14)^2 + (25 - 12)^2 = 450$

5. पाँच फसल संयोग $= (20 - 37)^2 + (20 - 29)^2 + (20 - 14)^2 + (20 - 12)^2 + (20 - 8)^2 = 614$

दोई के फसल संयोग के विचलनों का वर्गों का योग $(\sum d^2)$ न्यूनतम

दोई की विधि बीवर की विधि का ही परिमार्जित रूप है वर्तमान में दोई की विधि अन्य विधियों की तुलना में अधिक मान्यता रखती है।

3. अन्य संशोधित विधियाँ –

1) **पी स्कॉट 1957 –** पी स्कॉट ने तस्मानिया के शस्य एवं पशु संयोजन प्रदेश के निर्धारण में बीवर द्वारा प्रयुक्त विधि का प्रयोग किया पी स्कॉट ने कृषि के साथ–साथ पशु पालन को भी महत्व दिया।

2) **जान्सन 1958 –** जान्सन ने अपना कार्य पूंजी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) को संयोजन का केन्द्र बनाया जानसन ने एकल, द्ववि फसलों के अंतर्गत प्रतिशत क्षेत्रफल को न मानकर पाँच स्तरीय मापक (उच्चतम, उच्च, मध्यम, निम्न तथा निम्नतम) को आधार बनाया और फसलों को राज्य संयोजन में विभाजित किया लेकिन यह विधि बहु सरपंक फसलों वाले प्रदेशों के लिये उपयुक्त नहीं है।

3) **थामस (D Tomas) 1963 –** थामस ने फसल संयोजन के निर्धारण हेतु बीवर की विधि में कई संशोधन किये थामस ने शस्य संयोजन के प्रसरण की गणना फसलों के लिये सैद्धांतिक तथा वास्तविक प्रतिशत के आधार पर की।

4) **आर.के. बनर्जी 1963 –** वी.के. राय 1967 एन.पी. अय्यर 1969, बी मण्डल 1969, बी.एस. चौहान 1971 आदि अनेक भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने भारत के विभिन्न प्रदेशों में शस्य संयोजन पर कार्य किये लेकिन भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने बीवर की विधि को प्राथमिकता दी।

Diversification (विविधीकरण) – विविधीकरण का अभिप्राय कम उत्पादकता की फसलों और फार्म कार्यों के स्थान पर अपेक्षाकृत उचित

मूल्य की फसलों और अन्य फार्मो उत्पादों में संसाधन प्रयुक्त करना है भूमि और जल की कार्य प्रणाली भी विविधीकरण के लिये महत्वपूर्ण है। फसल विविधीकरण एक ऐसा प्रणाली है जिससे किसान ज्यादा फसलों का उत्पादन कर सकते हैं वह भी अच्छे किस्म के बीजों को डालकर फसल का रखरखाब करके और फसल को आग लगने से बचाने के लिये, संसाधनों का उचित प्रयोग करके फसल विविधीकरण को बढ़ाया जा सकता है। फसल में बदलाव करते भी विविधीकरण को बढ़ाया जा सकता है जैसे– गेहूँ, चावल के अतिरिक्त अन्य फसलों को उसमें शामिल किया जा सकता है और उपज को बढ़ाया जा सकता है।

फसल विविधीकरण अपनाकर किसान अपनी फसलों से बीमारियों को दूर भगा सकता है इसमें अधिक कीटनाशकों की जरूरत नहीं पड़ैगी और मिट्टी की उर्बरता बनी रहेगी। कीटनाशक दवाईयों से मिट्टी की उर्वरता समाप्त हो जाती है। फसल विविधीकरण अपनाने से काफी समस्यायें अपने आप दूर हो जाती है। किसानों को जल्दी फसलों की बिजाई भी करानी चाहिये फसल विविधीकरण के कई लाभ है उदाहरण

के लिये यह मिट्टी की संरचना में सुधार करता है और साथ ही साथ ग्रामीण समुदायों को मजबूत करता है।

कृषक विविधीकरण अपनाकर फसलों के अनुसार को बढ़ाते हैं और फसलों का उत्पादन भी अधिक मात्रा में होता है। इसलिये कृषि में विविधीकरण का बहुत महत्वपूर्ण है। बिना विविधीकरण को अपनाये बिना ही किसान फसलों की उपज में बढ़ोत्तरी नहीं कर सकता इसलिये कृषि में विविधीकरण आवश्यक है।

VON THUNEN'S MODEL AND ITS MODIFICATION-

कृषि मानव की प्रमुख आवश्यकता है यह ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक महत्व रखती है कृषि के अंतर्गत भूमि से सिंचाई, जोत, बीजों का डालना (फसल उगाना) पशु पालन, वृक्षारोपण आदि कार्य सम्मिलित है कृषि के स्थानीकरण (उपस्थिति) का सामान्य अर्थ है –

कृषि भूमि उपयोग या ग्रामीण भूमि उपयोग।

कृषि उत्पादन अधिकतर बड़े क्षेत्र में किया जाता है। जबकि उद्योगों को किसी स्थान विशेष पर ही स्थापित किया जा सकता है अतः कृषि

का स्थानीयकरण एवं उद्योग के स्थानीकरण में भिन्नता रहती है। कृषि स्थानीकरण का सिद्धांत मूलतः दो भूखण्डों में केन्द्रित रहता है उदाहरण–

ए भूखण्ड– एक भूखण्ड पर गेहूँ व दूसरे भूखण्ड पर चावल उगाया जा सकता है इसके दोनों की उपज से अच्छी आय प्राप्त हो सकती है।

बी भूखण्ड– पर भी इसी तरह उपज की जा सकती है और आय प्राप्त की जा सकती है। तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने की कोशिश की जा सकती है कृषि भूमि उपयोग के लिये कई सैद्धांतिक उपागमों को अपनाया गया वॉन थ्यूनेन ने 1826 में सामान्यीकरण का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया इसके बाद जोनासन, बेकर सहित अनेक विद्वानों ने कृषि उपस्थिति के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया और संशोधन भी।

वॉन थ्यूनेन का कृषि उपस्थिति सिद्धांत – (1983–1850) (Von Thunen's Agricultural Location Theory) सबसे पहले सन् 1826 में कृषि के स्थानीकरण के सिद्धांत की शुरूआत हुई वे जर्मनी

के मैकलेवर्ग में एक कृषि क्षेत्र के व्यवस्थापक थे जिन्होनें अपने अनुभव काल में भूमि की आर्थिक समीक्षा की 1826 में ही वान थ्यूनेन ने कृषि का स्थानीकरण सिद्धांत दिया।

मान्यतायें –

वान थ्यूनेन ने एक अलग प्रकार के प्रदेश की कल्पना की है। जिसके मध्य में एक नगर स्थित होता है और उसके चारों ओर विस्तृत कृषि क्षेत्र स्थित होता है और यह उत्पादन संबंधी आवश्यकताओं के लिये आत्मनिर्भर होता है इस प्रकार यहाँ की चीजों का (विलग प्रदेश या अलग प्रदेश) कृषि उत्पादन अन्य बाजारों के लिये नहीं किया जाता।

विलग प्रदेश में प्राकृतिक पर्यावरण जैसे भूमि की बनावट, जलवायु आदि ठीक ढंग से बल्कि समान होती है और वह विभिन्न प्रकार की फसलों के उत्पादन के लिये अनुकूल होता है।

केन्द्रिय नगर से दूरी बढ़ने तथा भार में वृद्धि के साथ परिवहन व्यय में भी आनुपातिक वृद्धि होती है।

सम्पूर्ण विलग प्रदेश से केवल एक ही केन्द्रिय नगर होता है। जहाँ नगरीय जनसंख्या निवास करती है। शेष क्षेत्र में ग्रामीण जनसंख्या निवास करती है।

सम्पूर्ण विलग प्रदेश में एक ही प्रकार का परिवहन उपलब्ध होता है।

वॉन थ्यूनेन मॉडल के अनुसार– विलग प्रदेश में केन्द्रिय नगर के चारों ओर कृषि भूमि की सकेन्द्रित पेटियां पायी जाती है। जिसका वर्णन निम्न प्रकार है।

1. **प्रथम पेटी –** नगर से संलग्न और सबसे निकट स्थित होती है इसमें फल, साग सब्जियाँ व दुग्ध उत्पादन किया जाता है क्योंकि ये शीघ्र नष्ट होने वाले पदार्थ है स्थल परिवहन अधिक दूरी तक नहीं हो पाता।

2. **दूसरी पेटी –** लकड़ी का उत्पादन किया जाता है। लकड़ी भारी होने के कारण इसकी परिवहन लागत अधिक आती है। जिसके कारण इसका उत्पादन बाजार के निकट ही लाभप्रद होता है।

3. **तीसरी पेटी में –** गहन कृषि द्वारा अन्न का उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार यह परती रहित गहन कृषि की पेटी होती है।

4. चौथी पेटी में – इसमें अन्न की खेती की जाती है। किन्तु इसमें कुछ भूमि को परती भी छोड़ा जाता है।

5. पाँचवी पेटी में – परती और चारागाह की अधिकता पायी जाती है इस प्रकार इस पेटी में त्रिक्षेत्र व्यवस्था पायी जाती है।

6. छटी पेटी में – कृषि उत्पादन की सबसे बाहरी पेटी होती है जिस पर पशु पालन किया जाता है।

दूसरे मॉडल में विलग प्रदेश में एक नौगम्य नदी और मुख्य नगर के अतिरिक्त एक लघु नगर या उपनगर को भी दिखाया गया है यदि विषम प्रदेश में कोई अन्य उपनगर या लघु नगर स्थित है तो उसके चारों ओर भी संकेन्द्रिय वृत खण्डों में फसलों का उत्पादन हो सकता है।

इस सिद्धांत के अनुसार – कृषि क्षेत्र में उसी फसल का उत्पादन किया जाता है जिसके अत्याधिक लाभ प्राप्त होता है इसका परिकलन निम्न प्रकार है।

आर्थिक लाभ $(P) = S - (C + T)$

जबकि $P =$ कृषक का फसल बेचने से लाभ

$S =$ फसल का विक्रय मूल्य

$C =$ उत्पादन लागत

$T =$ परिवहन लागत

अ – भूमि उपयोग की सकेन्द्रीय पेटीयां

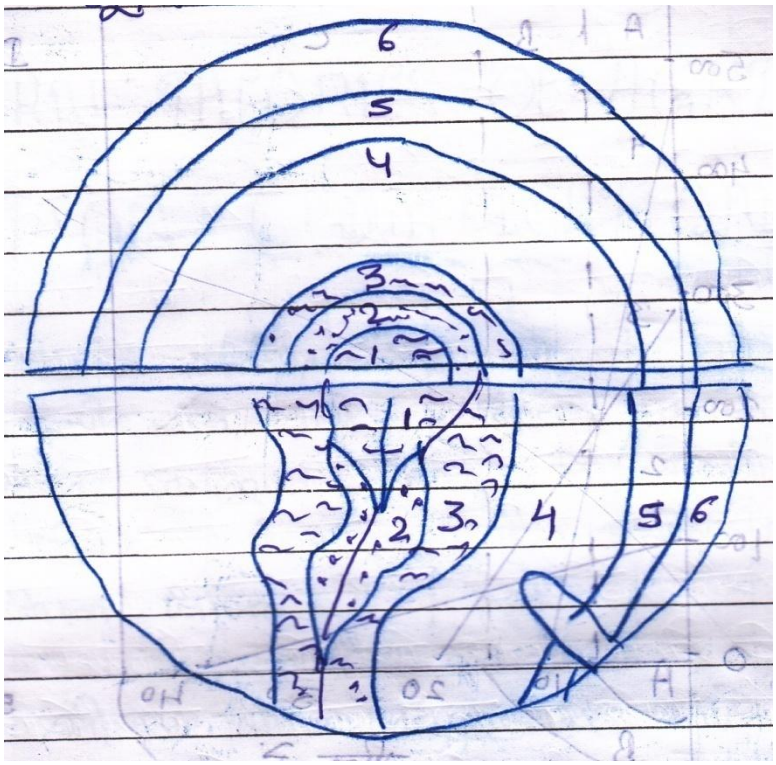

नौगम्य नदी और उपनगर द्वारा भूमि उपयोग में परिवर्तन

वान थ्यूनेन का कृषि उपस्थिति सिद्धांत

वॉल थ्यूनेन के अनुसार – केन्द्रिय नगर को कोई भी वस्तु जितनी दूरी पर उत्पादित होगी बाजार तक लाने में परिवहन व्यय उतना ही अधिक होगा उदाहरण के लिये लकड़ी का उत्पादन आधी दूरी तक 50 प्रतिशत का लाभ होता है जो क्रमशः घटते हुये शून्य रहा जाता है। उसके पश्चात् अन्य का उत्पादन किया जाता है भारी वस्तुओं को दूर तक ले जाना, संभव नहीं है इसलिये इन्हें निकट तक ही रखा जाता है जिन वस्तुओं का उत्पादन कम है वे नगर से अपेक्षाकृत दूर तक उत्पन्न की जा सकती है।

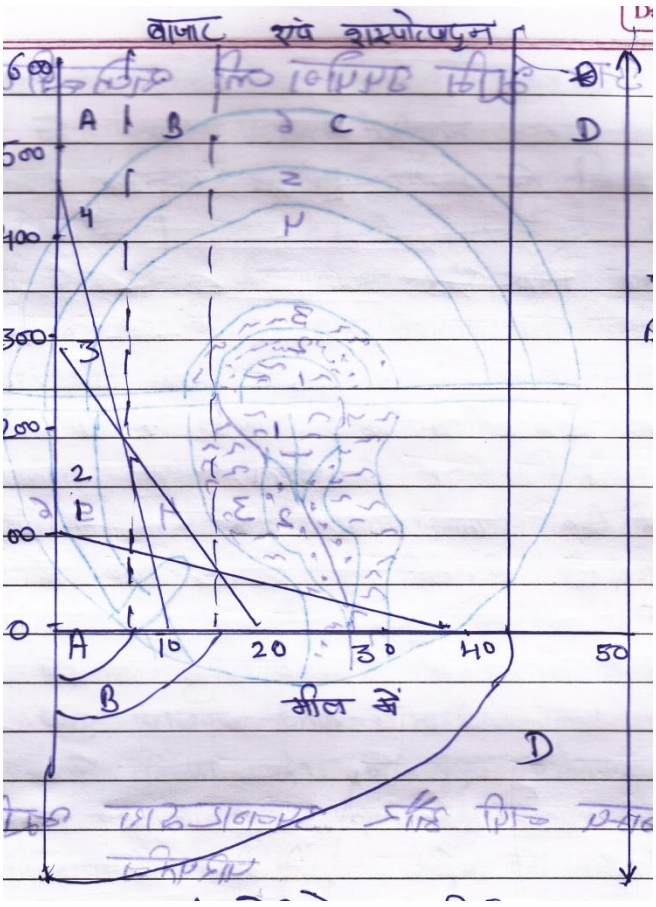

वॉन थ्यूनेन सिद्धांत की आलोचनायें–

1. वॉन थ्यूनेन द्वारा कल्पित मान्यतायें वास्तविक जगत में नहीं पायी जाती इसी आलोचना से बचने के लिये वॉन थ्यूनेन ने विलग प्रदेश में नौगम्य नदी और उपनगर में कृषि पेटियों के संकेंद्रीय स्वरूप में परिवर्तन को स्वयं स्वीकार कर लिया है।

2. वॉन थ्यूनेन द्वारा जो विलग प्रदेश की कल्पना की गई है। वह वर्तमान समय में कहीं भी मिलना कठिन है।

3. कल्पित मान्यताओं के द्वारा कृषि कार्य, उत्पादन दर, परिवहन सिंचाई आदि नहीं की जा सकती इसलिये वॉन थ्यूनेन का यह सिद्धांत लागू नहीं होता।

4. वॉन थ्यूनेन का सिद्धांत पूर्णतः कल्पित मान्यताओं पर आधारित है इसलिये यह कृषि पर खरा नहीं उतरता।

कृषि स्थानीकरण के आधुनिक सिद्धांत

MODERN THEORIES OF AGRICULTURAL LOCATION (MODIFICATION)

कृषि का आधुनिक सिद्धांत कल्पित मान्यताओं पर नहीं बल्कि वास्तविक जगत में पायी जाने वाली अनुकूलतम दशाओं पर आधारित है इसके अंतर्गत अनुकूलतम दशाओं में फसलों के उत्पादन क्षेत्रों का सीमांकन किया जाता है इसके आधुनिक सिद्धांत निम्नलिखित है।

1. प्राकृतिक सीमाओं तथा अनुकूलतम दशाओं का सिद्धांत (Theory of Physical and Optianyan Conditions) – फसलों का उत्पादन विशिष्ट आर्थिक दशाओं जैसे – तापमान, जलवायु वर्षा की आवश्यकता होती है फसलों के उत्पादन के लिए आवश्यक दशायें अनुकूल नहीं पायी जाती प्रत्येक भूखण्ड का क्षेत्र कैसा है वहाँ कौन सी फसल उगाई जायेगी इस प्रकार प्रत्येक फसल के लिये निर्धारित प्राकृतिक सीमाओं के अंतर्गत अनुकूलतम सीमाओं का सीमांकन किया जाता है अतः इस क्षेत्र को अनुकूलतम प्राकृतिक दशाओं का स्रोत कहते हैं।

अनुकूलतम दशाओं वाले क्षेत्र सदैव स्थिर नहीं रहते बल्कि ये प्राविधिक के आधार पर परिवर्तित होते रहते हैं उदाहरण– उर्वरकों के प्रयोग, सिंचन सुविधाओं का विस्तार के कारण बेकार पड़ी बंजर भूमि पर गेहूँ, चावल की खेती होने लगी अतः विभिन्न फसलों के उत्पादन क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुये हैं।

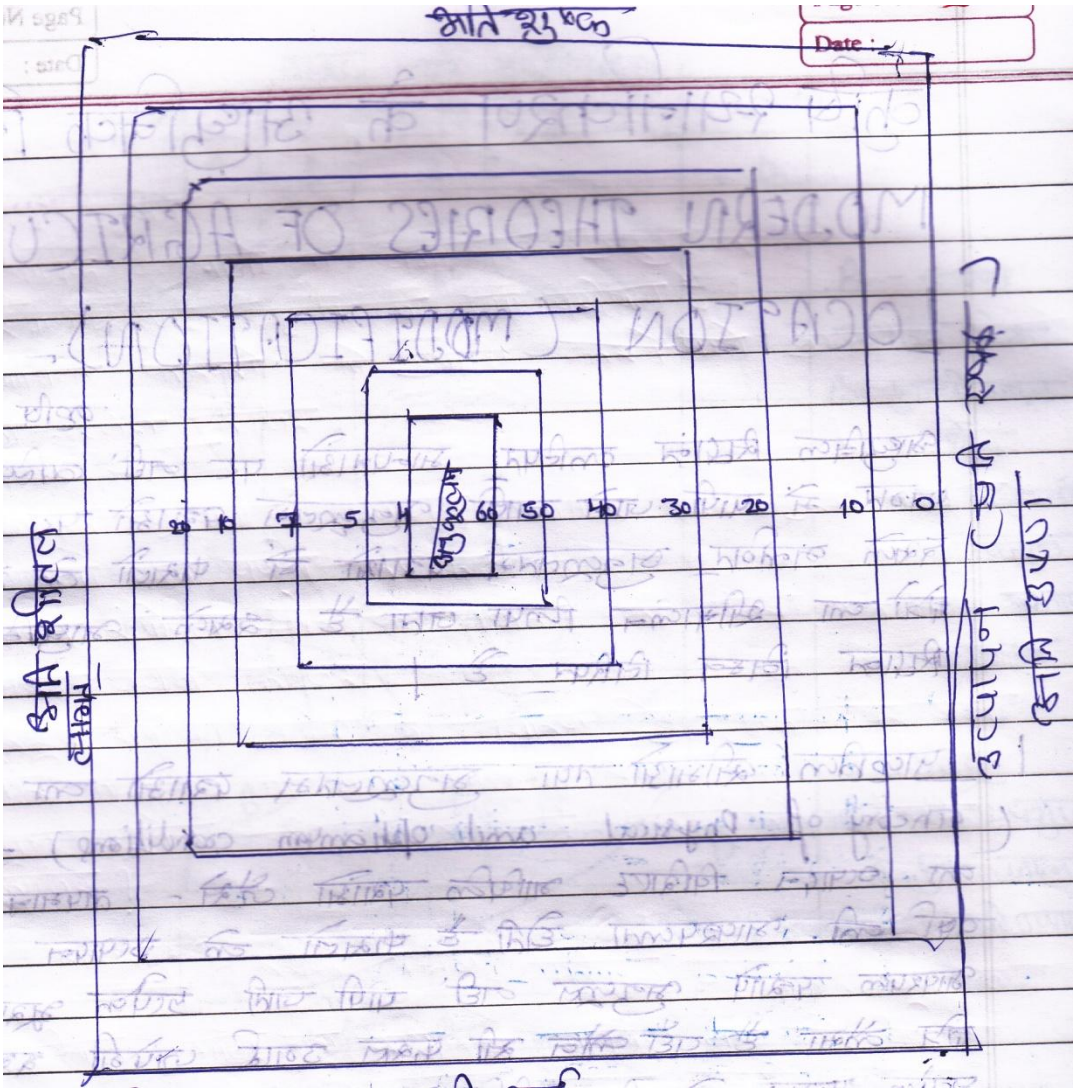

2. आर्थिक सीमाओं तथा अनुकूलतम दशाओं का सिद्धांत (Theory of Economic Limits and optimum conditions) – फसलों का उत्पादन आर्थिक दशाओं से भी निर्धारित होता है। आर्थिक दशाओं के अंतर्गत परिवहन व्यवस्था, बाजार की उपस्थिति, माँग की मात्रा आर्थिक नीति आदि को सम्मिलित किया जाता है जो फसल उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। इस दशा में फसल उत्पादन का विशेष महत्व होता है। इन आर्थिक तत्वों के परिवर्तनशील होने के कारण इनके आधार पर किसी फसल की आर्थिक सीमा का निर्धारण अधिक कठिन होता है। अनुकूलतम आर्थिक दशाओं का क्षेत्र विशेष महत्व रखता है। यदि अनुकूलतम आर्थिक दशा वाले क्षेत्र में कई फसलों का उत्पादन किया जा सकता है तो उसी फसल का उत्पादन किया जायेगा जिससे सबसे अधिक आर्थिक लाभ हो।

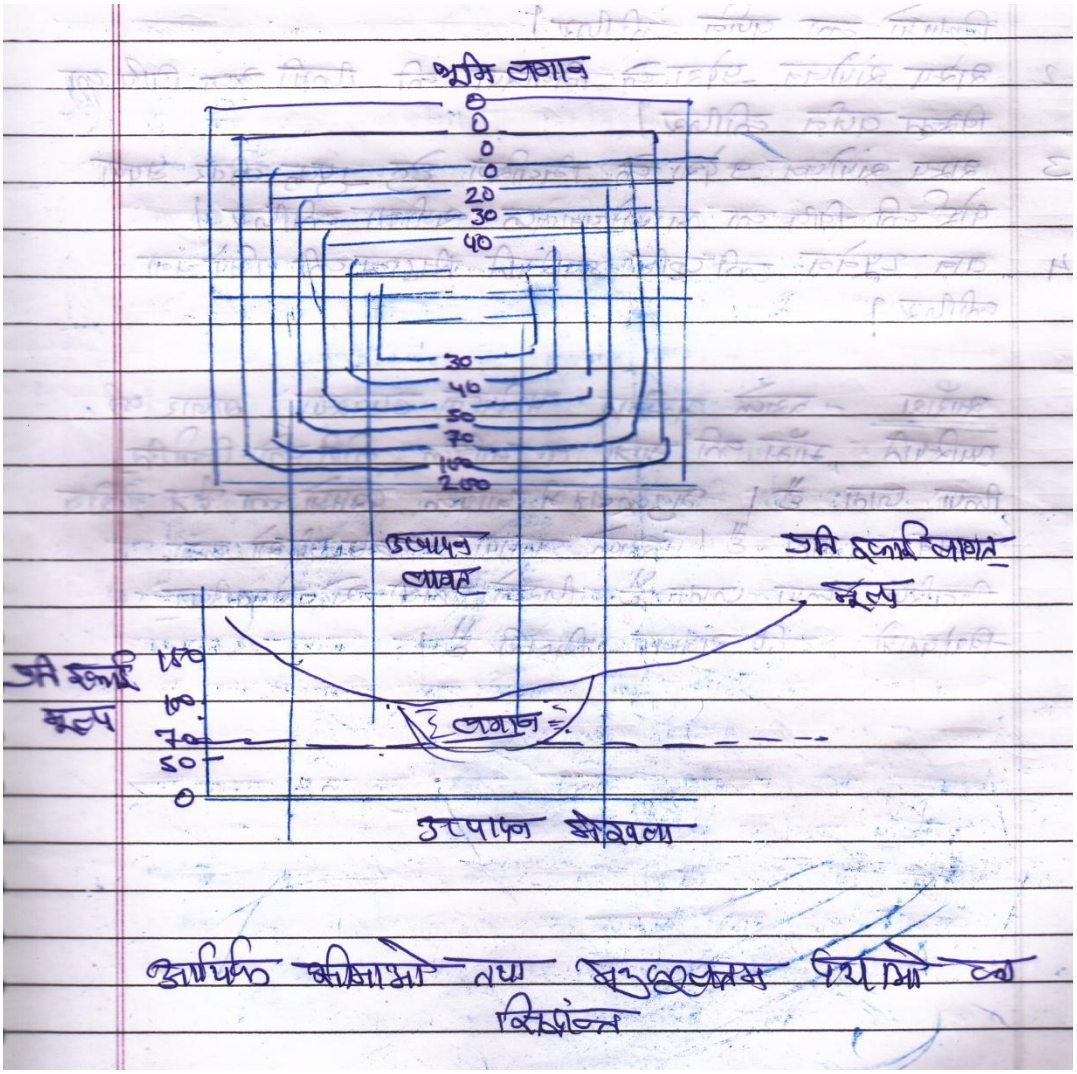

भूमि लागत
0
0
0
0
20
30
40
30
40
50
70
100
200
उत्पादन लागत
150
100
70
50
0

प्रश्न उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्न –

प्र.1 आर्थिक क्रियाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

प्र.2 स्थानांतरण कृषि की क्या विशेषता है।

प्र.3 आर्थिक कारकों को प्रभावित करने वाले प्राकृतिक कारकों का उल्लेख कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

प्र.1 आर्थिक क्रियाओं को वर्गीकृत कीजिए और प्रमुख आर्थिक क्रियाओं का वर्णन कीजिए।

प्र.2 शस्य संयोजन प्रदेश के निर्धारण की किसी विधि का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र.3 शस्य संयोजन प्रदेश के निर्धारण हेतु प्रयुक्त बीवर अथवा दोई की विधि का आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

प्र.4 वॉन थ्यूनेन की कृषि उपस्थिति सिद्धांत की विवेचना कीजिए।

सारांश–इसके अंतर्गत परिवहन व्यवस्था, बाजार की उपस्थिति, माँग की मात्रा व आर्थिक नीति को निर्धारित किया जाता है। अनुकूलतम में आर्थिक दशाओं का क्षेत्र विशेष महत्व रखता है। इसके अलावा कृषि प्रदेशों का निर्धारण किया जाता है। जिसमें कृषि से संबंधित विशेषताओं की समानता मिलती है।

Unit 3rd

Classification of industris - उद्योगों का वर्गीकरण –

किसी विशेष क्षेत्र में भारी मात्रा में सामान का निर्माण करना, वृहद् रूप से सेवा प्रदान करने के मानवीय कर्म को उद्योग कहते हैं–

उद्योगों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. **प्राइमरी उद्योग–** इसके अंतर्गत कोयले पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस से ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है इससे कच्चे माल का उत्पादन कर उत्पादकता को बढ़ाया जाता है।

2. **द्वितीयन उद्योग–** इसके अंतर्गत भारी उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है जैसे– भारी मशीनों का निर्माण, इंजीनियरिंग धातु उद्योग, बिजली उत्पादन उपकरण तथा प्लास्टिक का उत्पादक आदि सम्भावित है।

3. **तृतीयक उद्योग–** इसके अंतर्गत व्यापार, वाणिज्य, परिवहन, दूरसंचार, मनोरंजन, शिक्षा पर्यटन तथा प्रशासन सम्मिलित है।

विभिन्न उद्योग भिन्न–भिन्न स्थान पर लगाये जाते हैं। कारखानों की स्थापना या उद्योगों की स्थापना वहाँ की जलवायु वहाँ का वातावरण व भौतिक परिवेश को स्थान में रखकर किया जाता है इसके अलावा आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारणों को भी ध्यान में रखा जाता है।

उद्योगों को उत्पादित करने वाले कारक निम्न प्रकार है।

अ) कच्चे माल की उपलब्धि

ब) ऊर्जा की उपलब्धि

स) कुशल तथा सस्ते मजदूर

द) पूँजी

ई) प्रबन्धन क्षमता

एफ) जलवायु

जी) राजनैतिक स्थिरता

एच) मूलभूत आवश्यकतायें।

अ) कच्चे माल की उपलब्धि– उद्योगों को स्थापित करने के लिये सर्वप्रथम आवश्यक है कि कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में आसानी से प्राप्त हो सके जिससे उद्योग सुचारू रूप से कार्य कर सके।

ब) ऊर्जा की उपलब्धि – दूसरी महत्वपूर्ण आवश्यकता ऊर्जा की है। ऊर्जा के बिना उद्योगों को चलाना आवश्यक नहीं है कहने का तात्पर्य है कि ऊर्जा के बिना उद्योग पूर्ण रूप से कार्य नहीं कर सकते।

स) कुशल तथा सस्ते मजदूर – उद्योगों की महत्वपूर्ण आवश्यकता कुशल कारीगरों व सस्ते मजदूरों की है। कुशल व सस्ते मजदूरों के द्वारा कार्य अच्छे ढंग से किया जा सकता है व उन्हें पारिश्रमिक भी कम देना पड़ेगा।

द) पूँजी – पूँजी के द्वारा ही अच्छे उद्योगों का विकास किया जा सकता है यदि पर्याप्त पूँजी न हो तो उद्योग नहीं चलाया जा सकता है।

ई) प्रबन्धन क्षमता– प्रबन्धन क्षमता भी उद्योगों को बीमारी में अहम भूमिका निभाती है बिना प्रबन्धन के द्वारा उद्योग सुचारू रूप से कार्य नहीं कर सकते।

एफ) जलवायु– जलवायु उद्योगों का महत्वपूर्ण कारक है जहाँ उद्योग स्थापित है वहाँ की जलवायु उसी के अनुरूप होनी चाहिये।

जी) राजनैतिक स्थिरता– उद्योगों के विकास में राजनीतिक कारण नहीं होना चाहिये।

एफ) मूलभूत आवश्यकतायें– मूलभूत आवश्यकताओं में बिजली की सुविधा व पानी की सुविधा होनी ही चाहिये उद्योग बिना बिजली पानी के नहीं चलाये जा सकते इसके अलावा वहाँ उद्योग स्थापित है वहाँ पर सड़क निर्माण था सड़क की व्यवस्था होनी चाहिये जिससे आवागमन सुचारू रूप से चल सकें व वस्तुओं का आदान–प्रदान एक जगह से दूसरी जगह पर हो सके। विश्व के प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों में लोरेक, मास्को, बेसिन, ग्लाखगो स्काटलैंड, ब्राजील, कोलम्बिया, पेरू, अर्जेन्टाइना, दक्षिण अफ्रीका तथा भारत आदि है। इन प्रदेशों में लोहा इस्पात सूती एवं ऊनी वस्त्र उद्योग, बिजली का सामान, औषधी उद्योग, जटापोत्र निर्माण, इंजीनियरिंग उद्योग, रासायनिक उद्योग शामिल है।

उद्योगों में कभी–कभी निम्न समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है जैसे–

मूलभूत सुविधाओं का अभाव

कच्चे माल की कमी

उद्योगों का क्षेत्रीय संकेन्द्रण

सरकारी नीतियाँ

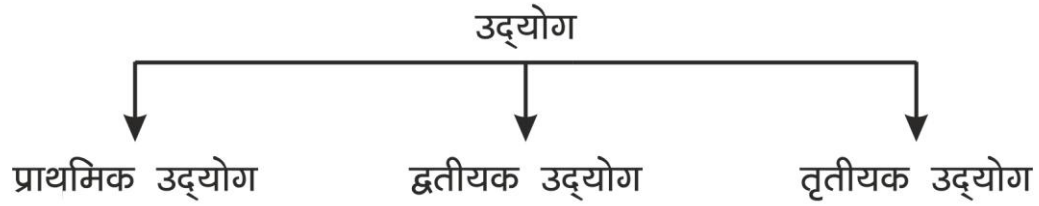

Resource based and footloose industries -

आर्थिक भूगोल में फुटलूज उद्योग ऐसे उद्योगों को कहा जाता है जिन पर कच्चे माल की स्रोत से दूरी का (परिवहन) असर नहीं होता ऐसे अधिकतर उद्योग कहीं भी स्थापित किये जा सकते हैं।

किसी विशेष क्षेत्र में भारी मात्रा में सामान का निर्माण का वृहद् रूप से सेवा प्रदान करने के मानदीप कर्म को उद्योग कहते हैं।

Resource संसाधन– ‘‘भूगोल प्रो. अलेक्जेन्ण्डर के अनुसार भूतल पर एक समान से दूसरे स्थान पर पायी जाने वाली विभिन्नता का यथार्थ, क्रमबद्ध और युवक संगत वर्णन तथा व्याख्या करता है।

इस अध्ययन से प्राकृतिक तथा मानवीय इस सांस्कृतिक दोनों ही प्रकार के तत्वों का समावेश होता है संसाधन भूगोल के अध्ययन की भिन्न विशेषतायें है।

1. यह अध्ययन वैज्ञानिक, क्रमबद्ध एवं युक्तिसंगत ढंग से किया जाता है।

2. इसका सम्बन्ध भूतल पर पाये जाने वाले उन तत्वों से है को प्रकृति दत्त या मानव द्वारा निर्मित एवं सांस्कृतिक है।

3. भूगोल का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है।

पृथ्वी के धरातल पर मानव की स्थिति का बहुत अधिक महत्व है। यही अपने भोजन रहन–सहन, वस्त्र आदि के लिये काफी प्रयत्नशील रहता है। निश्चित तथ्य है कि पृथ्वी के विभिन्न भागों में मानव की आवश्यकतायें एक समान नहीं है प्राचीनकाल में मानव की जरूरते भोजन तक ही सीमित थी समय के अनुसार इनमें परिवर्तन हुआ और भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि ने बदल गई इस प्रकार इन्हें उद्योगों, वाणिज्य एवं व्यापार की आवश्यकता होने लगी परिवहन, आवागमन एवं सन्देशवाहन के विभिन्न साधनों का विकास होता है।

इस प्रकार मानव की आर्थिक क्रियाओं में परिवर्तन एवं विकास होने लगा इस प्रकार कहा जाता है कि आर्थिक भूगोल परिवर्तनशील है जिसका केन्द्र बिन्दु मानव और स्थल है।

किसी देश के व्यापार और वाणिज्य पर वहाँ की भौगोलिक प्रकृति, संरचना, जलवायु तथा स्थिति का आपधिक प्रभाव पड़ता है इन तथ्यों के अध्ययन द्वारा आर्थिक भूगोल भौतिक भूगोल से संबंध स्थापित करता है।

संसाधन भूगोल का विषय पोत्र उतना ही व्यापक है जितना मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का विस्तार। मानव की अनेक आवश्यकताओं में से तीन प्रमुख अथवा आधारभूत शारीरिक अथवा जैविक आवश्यकतायें हैं ये तीन महत्वपूर्ण आवश्यकतायें

(i) भोजन

(ii) वस्त्र

(iii) और आश्रय है।

प्रकृति ही इन संसाधनों की जननी है अतः इन्हें प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है। प्राकृतिक संसाधनों को दो भागों में बांटा जाता है।

1. जैविक संसाधन

2. अजैविक संसाधन।

1. जैविक संसाधन– जैविक संसाधनों के अंतर्गत वृक्षों तथा जीव जन्तुओं से प्राप्त होने वाली वस्तुओं में सम्मिलित की जाती है जैसे– वन, घास के मैदान, समुद्र में पाये जाने वाले पदार्थ। वनों से मानव को फल, दाल, रबड़, गोंद, जड़ीबूटियाँ प्राप्त होती है पशुओं से दूध, माँस व ऊन प्राप्त की जाती है। झीलों, तालाबों और समुद्र तटीय क्षेत्रों में मछलियाँ पकड़ने का व्यवसाय होता है। खंड जैसा वृषक जिससे दूध प्राप्त करके रबड़ बनाया जाता है रबड़ को गंधक के साथ मिलाकर अनेक वस्तुयें बनाई जाने लगी, रबड़ से असराप वस्तुयें बनाई जाने लगी।

2. अजैविक संसाधन– इसके अंतर्गत धरातल, चटटानें, वायु, जल, खनिज, ईंधन धातुएँ भवन निर्माण के पत्थर आदि सम्मिलित किये जाते हैं। इससे विभिन्न प्रकार की वस्तुये बनाई जाती है वायु से वायु शविक तथा नाइट्रोजन प्राप्त किया जाता है इसी प्रकार जल का उपयोग भी पीने के पानी, कृषि से शविक के साधनों में किया जाता है जल और वायु के बीच में मिट्टी आती है मिट्टी के द्वारा न तो

पेड़–पौधे, पनप सकते हैं और न ही मानव को पौष्टिक पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं इस प्रकार जल व वायु के अलावा मिट्टी का भी विशेष महत्व है।

मानवीय संसाधन – संसाधनों में मानवीय संसाधन भी प्रमुख है क्योंकि बिना मानव यान के प्राकृतिक संसाधनों का कोई मूल्य नहीं है मानव ही प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है पृथ्वी पर प्राप्त होने वाले प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने के लिये मानव के विचार उसके संगठन और श्रम सभी की आवश्यकता होती है। मानव की सक्रियता व कुशलता निम्न तथ्यों पर निर्भर करती है जिसे निम्न दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

जैविक अनुसंधान– इसके अंतर्गत प्रजाति या जाति की शरीर संबंधी क्रियाओं का व उसके शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक संगठन प्रणाली तथा उसके आनुवांशिक प्रभावों को परिवर्तित करते रहते हैं।

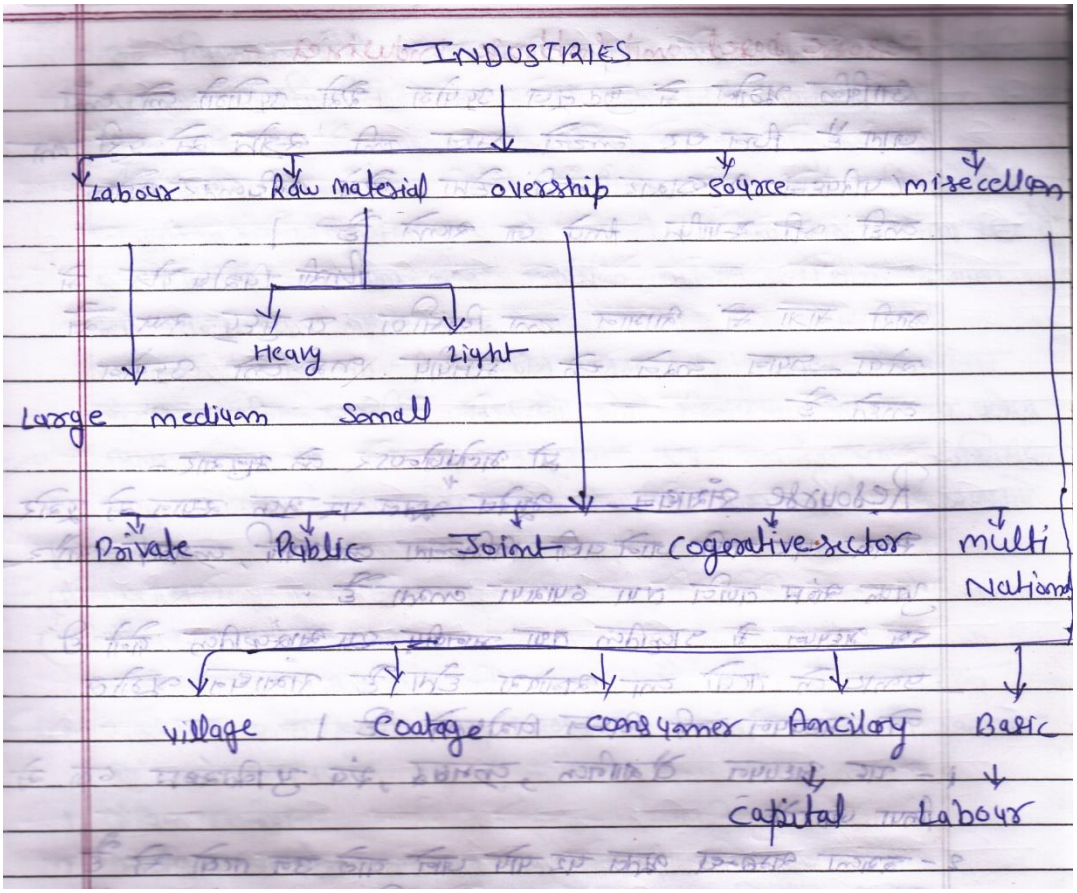

संसाधन– ''कोई वस्तु पदार्थ या तत्व उसी समय संसाधन जाना जाता है जब उसने मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति, कार्य विधि अथवा लाभ प्रदान करने की क्षमता हो'' मनुष्य की क्षमता और संसाधनों का घनिष्ठ संबंध माना गया है।

डॉ. जिम्मरमैन के अनुसार– ''संसाधन से अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना अर्थात व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है।''

कोई वस्तु जब ही संसाधन कहीं जा सकती है जब मनुष्य के लिये उसका उपयोग हो उदाहरण– कोयला संसाधन है उसके द्वारा मानव को ऊर्जा शक्ति मिलती है जिससे उसके उद्योग चलाये जाते हैं उसी प्रकार लोह स्वर्ण आदि संसाधन है पहले संसाधन नहीं थे क्योंकि मानव को ज्ञान नहीं था लेकिन आधुनिक मानव के इसके उपयोग से अनेक कार्य किये जा अब संसाधन बन गये।

विशेषतायें–

1. संसाधन मानव के लिए उपयोगी होते हैं।

2. इनके अंदर बौद्धिक, सांस्कृतिक और भौतिक क्षमता होती है इसी क्षमता के आधार पर इसका महत्व होता है।

संसाधन और प्रतिरोध– ''संसाधन और प्रतिरोध दोनों साथ–साथ चलते हैं जिम्मरमेन ने कहा है कि संसाधन और प्रतिरोध दोनों साथ साथ चलते हैं फलस्वयप मानव को सन्तोष पहुँचाने का दायित्व संसाधनों और प्रतिरोध दोनों का ही है अकेले संसाधनों की ही नहीं।''

संसाधन और संस्कृति– प्रकृति मानव एवं संस्कृति तीनों मिलकर संसाधनों को उपयोगी बनाते हैं इसलिये तीनों को संसाधनों के ब्रहमा,

विष्णु और महेश कहा जा सकता है। उदाहरण– जिस प्रकार भूमि जलवायु जल तीनों का ही उपयोग संसाधन के रूप में किया जाता है। जैसे– कृषि के लिये पर्याप्त भूमि अच्छी जलवायु जिससे अच्छी फसल का उत्पादन हो सके और जल कृषि के लिये जितने जल की पर्याप्त मात्रा आवश्यक है ये सारी चीजों में मानव श्रम की आवश्यकता होती है प्रकृति, मानव और संस्कृति के सहयोग के बिना पर संभव नहीं है।

संसाधनों का वर्गीकरण– प्राकृतिक संसाधन पूरे विश्व में समान रूप से नहीं पाये जाते मानव संस्कृति की प्रगति एवं विकास इन प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है कुछ संसाधन उपयोग करने पर नष्ट हो जाते हैं कुछ संसाधनों का सावधानीपूर्वक उपयोग करने पर ये लम्बे समय तक चलते हैं। इस दृष्टि से इन्हें निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. जीवीय एवं अजीवीय संसाधन

2. पुनः पूर्ती एवं आपूर्ति संसाधन

3. सम्भाव्य एवं विकसित संसाधन

4. कच्चे पदार्थ एवं शाविक के संसाधन

5. कृषि असम्बंधी तथा पशुचरणिक संसाधन

6. खनिज पदार्थ तक औद्योगिक संसाधन

1. जीवीय एवं अजीवीय संसाधन– इन्हें भी दो भागों में बांटा जा सकता है।

अ) जीवीय संसाधन– ये जीवित संसाधनों से प्राप्त होते हैं इनमें मुख्यतः प्राणियों एवं वनस्पति पदार्थो से सुलभ संसाधन है।

ब) अजीवीय संसाधन– आजीवीय संसाधनों से प्राप्त होने वाले पदार्थो को आजीविय संसाधन कहा जाता है इस प्रकार के संसाधन मुख्यतः चट्टानों या खानों से प्राप्त होते हैं जैसे– लोहा, चाँदी, बाक्साइट, सिल्वर, कोयला, पेट्रोलियम आदि।

2. पुनः पूर्ति एवं आपूर्ति संसाधन–

अ) पुनः पूर्ति संसाधन– ऐसे संसाधन जिनके समाप्त होने पर उनकी पूर्ति पुनः होती है पुनः पूर्ति संसाधन कहलाते हैं। जैसे– प्राकृतिक

वनस्पति, वन, जल, सौर ऊर्जा वन जीव जन्तु आदि जल शक्तिक एवं सौर ऊर्जा समान न होने वाले संसाधन है।

ब) पुनः पूर्ति न होने वाले संसाधन – ऐसे संसाधन जिनकी पूर्ति पुनः संभव नहीं है उन्हें पुनः पूर्ति संसाधन कहा जाता है।

अतः स्पष्ट है कि आर्थिक भूगोल, भूगोल की अविभाजित शाखा है जो अपने काल में सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं को समेटे हुये हैं आर्थिक भूगोल की उपयोगिता अत्याधिक है क्योंकि यह मात्र ज्ञान का स्रोत नहीं अपितु आर्थिक विकास एवं नियोजन का पथ प्रदर्शक है।

ब) पशु चारण संसाधन – ये संसाधन पशुओं से प्राप्त होते हैं। जैसे–दूध मक्खन, पनीर, माँस, खान, सींग, ऊन आदि प्राप्त होते हैं।

6. खनिज पदार्थ तथा औद्योगिक संसाधन–

अ) खनिज संसाधन – वे समस्त संसाधन जिन्हें पृथ्वी से खनन क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है खनिज संसाधन कहलाते हैं जैसे– लोहा, सोना, चाँदी, ताँबा।

ब) औद्योगिक संसाधन – इनका उपयोग आधुनिक उद्योगों से होता है औद्योगिक संसाधन कहलाते हैं। आधुनिक संसाधनों में मोटर कार,

इंजन, रेल डिब्बे, मकान, जलपान मशीन एवं मशीनी औजार युद्ध सम्बन्धी उपकरण विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में किया जाता है।

जिग्लरमैन ने संसाधनों को तीन वर्गों में विभक्त किया है।

अ) नण्यकरण की दृष्टि से

ब) प्राप्ति की दृष्टि से

स) अन्य दृष्टि से

अ) नण्यकरण की दृष्टि से –

1. परिवर्द्धनीय संसाधन – इन संसाधनों को लम्बे समय तक उपयोगी बनाये रखा जाता है जैसे – संरक्षण द्वारा मछली जीव, जन्तुओं को सुरक्षित रखा जा सकता है।

2. उपयोग द्वारा घटने वाले संसाधन – ये वे संसाधन है जिन्हें उपयोग करके पुनः नहीं बनाया जा सकता जैसे – कोयला, खनिज, पेट्रोलियम, गैस आदि।

3. आकृत/सतत् सनातन संसाधन – जिनका बारे बारे उपयोग करने के बाद भी नष्ट नहीं किया जा सकता जैसे– सूर्प ताप ऊर्जा, भूदृश्य स्थिति और स्थानीय जलवायु।

ब) प्राप्ति की वृद्धि से – जिम्मरमेन के अनुसार– यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि मात्रा, विविधता तथा प्राप्त होने के अन्तराल की दृष्टि से संसाधनों का वितरण बहुत ही विषम व असमान है।

(अ) सर्वव्यापी – वायु मिट्टी जल

(ब) सामान्यतः, सुलभ, घास, धन, कृषि

(स) विरल – बहुमूल्य खनिज, प्राकृतिक गैस, पेट्रोलियम

(द) बिखरे हुये – क्रायोलाइट, गन्धक

स) अन्य वृद्धि से – जिम्मरमैन के अनुसार –

(i) अप्रयुक्त संसाधन – इन्हें अब तक उपयोग में नहीं लाया गया।

(ii) अप्रयोजनीय संसाधन – ज्ञान होने के उपरांत भी उपयोग में नहीं लाये।

(iii) सम्भाव्य संसाधन – भविष्य में आवश्यकतानुसार प्रयोग किये जायेगें।

(iv) सुश्रुप्त संसाधन – जिनका उपयोग अभी तक नहीं किया गया।

संसाधनों का संरक्षण– जनसंख्या का निरन्तर ढूंढने के कारण संसाधनों का विदोहन हुआ और कारखाने के वृहद उद्योगों से इनकी मात्रा में काफी कमी आई अतः यह मात्रा आने लगा कि एक विरचित सीमा के उपरांत संसाधनों का उपयोग इतनी तेज गति से किये जाने का परिणाम मानव के हित में नहीं हुआ।

अतः संसाधनों का प्रयोग किया जाये और जिससे आने वाली पीढ़ी को संसाधन सतत् रूप से प्राप्त हो जाये।

विद्वान सरीपसी के अनुसार – संसाधनों का उपयोग कब किस प्रकार होगा इसका विश्लेषण करते हुए उपयोग को समय के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए।

एल.सी. ग्रे के अनुसार संरक्षण से आशय वर्तमान और भविष्य के बीच किसी किसी संसाधन के उपयोग में लाने का संघर्ष है।

मानव को संसाधन का दोहन नहीं करना चाहिए यदि वह आश्यकता के लिये उपयोग कर रहा है तो उसके संरक्षण के विषय में भी सोचना चाहिए।

यही संसाधन के संरक्ष का मूल उद्देश्य है।

संसाधनों के अभाव को दूर करने के लिये विकल्प भी खोजे जाने चाहिए।

संसाधनों का उपयोग उचित रूप से किया जाना चाहिए।

Page No. 70

ॐ श्री गणेशाय नमः
हर आशा शुभ

आर्थिक भूगोल पेपर नं. 18.

प्राकृतिक संसाधन

(1) शक्ति
- (a) जीवाश्म ईंधन
  - (1) लकड़ी
  - (2) पीट
  - (3) कोयला
  - (4) पेट्रोलियम
  - (5) प्राकृतिक गैस
  - (6) शैल्लोइल
  - (7) खनिज
- (b) स्वशक्ति
  - (1) वायु
  - (2) प्रवाहित जल
  - (3) ज्वारभाटा
  - (4) भू तापीय गर्मी
  - (5) सौर ऊर्जा

(2) कच्चा माल
- (a) खनिज
  - (1) लोहा
  - (2) अन्य धातुएँ
  - (3) लोहा मिश्रित धातुएँ
  - (4) बहुमूल्य धातुएँ
  - (5) खनिज
  - (6) गन्धक
  - (7) नमक
  - (8) चूने का पत्थर
  - (9) बालू (10) चिकनी मिट्टी (11) पत्थर
- (b) वनस्पति
  - प्राकृतिक
    - (1) टिम्बर
    - (2) रेशे
    - (3) गोंद
    - (4) रबड़
    - (5) तेल बीज
    - (6) चाय
    - (7) छाल
    - (8) कार्क
    - (9) कपूर
    - (10) चिलगोजा (11) औषधियाँ
  - कृषि जन्य
    - (1) रेशेदार पौधे
    - (2) रबड़
    - (3) तिलहन
    - (4) तम्बाकू
    - (5) गन्ना
    - (6) चुकन्दर
    - (7) फूल
- (c) पशु
  - (1) ऊन
  - (2) चमड़ा
  - (3) फर
  - (4) सींग
  - (5) चर्बी
  - (6) तेल
  - (7) मधुमक्खियाँ
  - (8) रेशम
  - (9) स्पंज

(3) भोज्य पदार्थ
- वनस्पति
  - प्राकृतिक
    - (1) जंगली फल
    - (2) जड़ें
    - (3) पत्तियाँ
    - (4) कुकुरमुत्ता
    - (5) कन्दमूल
  - कृषि जन्य
    - (1) खाद्यान्न
    - (2) गन्ना
    - (3) पेय पदार्थ
    - (4) सब्जियाँ
    - (5) मसाले
- पशु
  - (1) मांस
  - (2) दूध
  - (3) अण्डे
  - (4) शहद
  - (5) मछली

Foot Loose Industries (विचलन उद्योग)– इसके अंतर्गत स्वचलित वाहन उद्योग आते हैं। बढ़ती हुई तकनीकी, मानवों की कुशलता के कारण कच्चा माल अब कम मात्रा में लगने लगा है पलायन में सर्वाधिक सुधार होने एवं शीघ्र पहुँचने के कारण अब यह पूर्व की आवेदन सस्ता ही लगता है किसी क्षेत्र में उद्योग की स्थापना से पहले बाजार के आकार के बारे में पूर्ण सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिए बाजार दो प्रकार के होते हैं।

स्थानीय

बाहय

बाहय बाजार अंतर्राष्ट्रीय स्तर का भी हो सकता है वर्तमान में अनेक उद्योग अपने आवश्यक कारक स्थल से दूरी भी स्थापित किये जा सकते हैं अनेक ऐसे उद्योग भी विकसित हुए है जिन्हें कहीं भी स्थापित किया जा सकता है विचलन उद्योग कहलाते हैं।

पहले उद्योगों में कच्चा माल कम मात्रा में ही उपयोग में लाया जाता था धीरे–धीरे बीसवीं सदी के उद्योगों में औजार, उपकरण आदि के द्वारा बनने वाली वस्तुऐं, कृत्रिम रेशे, प्लास्टिक आदि विभन्न प्रकार के

उत्पादन करने लगे हैं इन पटट्रियों में होने वाले बाहय आर्थिक व्यवस्था संबंधी बैंक, बीमा, डाकघर आदि सुविधायें आदि अनेक लाभ स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं इस प्रकार औद्योगिक विस्तार एंव उद्योग स्थानान्तरण को भी प्रेरणा मिलती है।

विचलन उद्योग के कारखानों के लिये कोई पाबंदी नहीं है यह तो कहीं भी स्थापित किये जा सकते हैं उद्योगपति काफी सुविधाओं को ध्यान में रखकर इनका निर्माण करते हैं कभी कभी तो अपने ही निवास के केंद्र में स्थापित करते हैं जिससे काफी सुविधायें मिल जाती हैं संचालित वाहन उद्योग विचलन उद्योग का एक उपयुक्त उदाहरण है।

स्वचालित वाहन उद्योग – स्वचालित वाहन उद्योग सामान्य तौर पर विकसित देशों में अधिक पाये जाते हैं उत्पादन की वृद्धि को बड़े देश क्रमशः जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, जर्मनी, दक्षिणी कोरिया, फ्रांस, ब्राजील, स्पेन, कनाडा और भारत है। वाहन उद्योग में मोटर यान, रेल जहाज, हवाई जहाज इन सभी से संबंधित पुर्जे शामिल किये जाते हैं इसका इतिहास निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

अ) प्रयोग काल – 1895–1901 के मध्य इस काल में उद्योगों का उत्पादन बिखरा हुआ था और उद्योगों में कम पूंजी की आवश्यकता

होती थी बाग्जाल ने विद्युतीय इंजीनियर्स तथा वाटसले ने भेड़ की ऊन काटने की मशीनरी से संबंधित उपकरण बनाए इस तरह की कई कम्पनियाँ बनाई गई कम्पनियाँ कम होने के कारण श्रमिकों की पूर्ति आसानी से की जा सकी।

ब) लघु मापक उत्पादन काल – 1902–1913 इस काल में निर्माण कार्य तेज हुआ और स्थानीकरण का प्रारूप उभरने लगा इस काल में कारखानों का उत्पादन बढ़ा उत्पादन बढ़ने का मुख्य कारण कुशल श्रमिकों द्वारा कार्य करना संयुक्त राज्य अमेरिकका का स्वचलित वाहन उद्योग ब्रिटिश स्वचलित वाहन के उद्योग से पर्याप्त रूप से भिन्न इनसे बड़े पैमाने पर लाभ मिलने लगा।

स) वृहद् मापक उत्पादन का प्रारम्भिक एवं प्रथम काल – 1914–1938 के मध्य वृहद मापक उत्पादन हुआ इसका प्रारंभ फोर्ड द्वारा 1914 में हुआा उत्पादन कुछ सीमित क्षेत्रों में ही किया जाने लगा सगुंहहण स्थलों पर विभिन्न पुर्जे भाग एवं स्वचलित् पट्टी मार्ग द्वारा यातायात होने लगा। इसके अंतर्गत –

1. कारखाने का आकार बड़ा

2. कारखानों की संख्या में हास

3. कम्पनियाँ की संख्या में हास

4. विभिन्न पुर्जो एवं भागों की आपूर्ति के महत्व में हास

5. कुशल श्रमिक का महत्व हास

द) वृहत् मापक उत्पादन का द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत का काल – इस काल में 1939 के बाद कारखानों की स्थापना बिखरी प्रवृत्ति में थी जहाँ पर उद्योग पहले से ही स्थापित थे वहाँ पर आर्थिक लाभ की आशंका बढ़ गई क्योंकि औद्योगिक अर्न्तसम्बंधों का विकास होने से अन्य सेवाओं के लाभ भी प्राप्त हुये कम दूरी से पूर्ति होने पर विस्तरता एवं निश्चितता अधिक रहती है विश्व के विभिन्न देशों में 1960 से ही औद्योगिक गतिविधियाँ तेज हो गई। ब्रिटेन में तीन क्षेत्र मर्सी साइड में विजेन्द्रीकरण प्रारंभ हो गया फ्रांस में यह विकेन्द्रीकरण और भी अधिक बढ़ गया कई कारखाने स्थापित होने के बावजूद भी उत्पादन उतना नहीं हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह उद्योग पूर्वी भाग में रेल की घड़ी की भाँति फैला हुआ है उत्तरी क्षेत्र में वहन का निर्माण होता है और दक्षिणी क्षेत्र में व्यापारी या पूँजीपति रहते हैं इस

क्षेत्र में लौह अयस्क और इस्पात की चादरें उपलब्ध है रबर का उत्पादन भी अधिक मात्रा में किया जाता है।

कई कम्पनियाँ का अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपना स्थान है उत्पादन भी सीमित है उत्पादन को बढ़ाने के लिये कई प्रयास किये जा रहे हैं।

Theories of Industrial location -

(औद्योगिक उपस्थिति के सिद्धांत) – उद्योगों की उपस्थिति को प्रभावित करने वाले कारक निम्न है।

1. भूमि
2. श्रम
3. पूंजी
4. कच्चा माल
5. शविक संसाधन
6. बाजार
7. परिवहन के साधन

8. औद्योगिकी

9. जलापूर्ति

10. सरकारी नीति एवं निर्णय

11. उद्योग के स्थानीकरण के अन्य तत्व

किसी उद्योग को स्थापित करने के लिये कई चीजों का ध्यान रखना पड़ता है पूँजी भी कम लगे और उत्पादन अधिक हो, श्रम सस्ता है कुशल श्रमिक में इसी आधार पर इनको प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन इस प्रकार है।

1. भूमि – किसी भी उद्योग को स्थापित करने के लिये उपयुक्त भूमि की आवश्यकता होती है कुछ उद्योग अधिक जगह में स्थापित होते हैं तो कुछ कम जगह में ही अपना स्थान बना लेते हैं उदाहरण के लिये भारी उद्योग जैसे– लोहा इस्पात उद्योग, भारी इंजीनियरिंग उद्योगों के लिये अधिक भूमि की आवश्यकता होती है इसके लिये रास्ता भी सुलभ होना चाहिए जिससे परिवहन में आसानी हो उसी तरह छोटे उद्योग जैसे घड़ी का उत्पादन पर्वतीय क्षेत्रों में भी किया जा सकता

है। कोई इनके लिये भूमि का कोई औचित्य नहीं है परिवहन का भी विशेष महत्व नहीं होता।

2. श्रम – उद्योगों को स्थापित करने में श्रम का महत्वपूर्ण योगदान है जिस उद्योग ने श्रमिकों का होना आवश्यक है। विभिन्न उद्योगों में उत्पादन के पैमाने भिन्न–भिन्न होते हैं। जिन उद्योगों में श्रमिक (कुशल श्रमिक) होते हैं वहाँ उत्पादन में भी बढ़ोतरी होती है और जिन उद्योगों में बड़े पैमाने पर स्वचलित मशीनों का उपयोग किया जाता है उनमें श्रमिक भी कम लगते हैं और उत्पादन बढ़ने के साथ बेहतर हो जाता है कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमें मशीनों की अपेक्षा कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है जैसे – वस्त्र उद्योग, शिल्प, कढ़ाई एवं पोशाक, जूता उद्योग। श्रमिक एक गतिशील कारक है जो एक दूसरे से दूसरे स्थान पर भी जाकर अपना योगदान दे सकता है श्रमिकों को भी दो वर्गों में बांटा है।

1) कुशल श्रमिक

2) अकुशल श्रमिक

3. पूंजी – उद्योगों को प्रारंभ करने में पूंजी का महत्वपूर्ण स्थान है पूंजी के बिना कोई भी उद्योग स्थापित नहीं किया जा सकता, अलग–अलग पैमाने के अनुसार पूंजी (उद्योगों में) कम ज्यादा हो सकती है। वृहद उद्योगों को स्थापित करने में पूंजी अधिक लगती है। निजी उद्योगों के लिए भूमि को खरीदना, भवनों के निर्माण, मशीनों को खरीदना, कच्चे माल को खरीदना श्रमिकों को मजदूरी देना आदि के लिये पूंजी की आवश्कता होती है इसके अलावा परिवहन का मार्ग कैसा है उसमें कितना श्रम लगेगा इसके लिये भी पूंजी चाहिए 1990 के पश्चात वैश्वीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के फलस्वरूप पूंजी का व्यापक स्थानान्तरण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने लगा है।

4. कच्चा माल – उद्योग स्थापित होने के बाद पहली सबसे बड़ी आवश्यकता कच्चा माल है कच्चा माल इन उद्योगों का महत्वपूर्ण आधार है।

कच्ची सामग्रियाँ कई प्रकार की होती है। जैसे– लोहा इस्पात कच्ची सामग्री में बहुत भारी होता है लेकिन गलाने के बाद इनका भार बहुत कम हो जाता है उपलब्धता की दृष्टि से कच्चा माल समान हो सकता है जबकि अधिकांश कच्चे माल कहीं कहीं ही प्राप्त होते हैं

कुछ कच्चे मालों को अधिक दूरी तक नहीं ले जाया जा सकता ये जल्दी नष्ट हो जाते हैं।

कुछ उद्योग में कच्चे माल का उद्योग काफी मात्रा में हो और कार्य करने के पश्चात बिल्कुल हल्के हो जाते हैं। जैसे– लोहा इस्पात ऐसे उद्योग कच्चे माल के समीप ही स्थापित किये जाते हैं इसी प्रकार चीनी उद्योग गन्ना उत्पादन क्षेत्रों में ही बनाये जाते हैं।

जिस उद्योग में कच्चे माल का भार उत्पादन प्रक्रिया में लगभग समान रहता है ऐसे उद्योगों का स्थानीकरण कच्चे माल के स्रोत के समीप होना आवश्यक नहीं होता इस प्रकार के उद्योग कहीं भी स्थापित किये जा सकते हैं। जैसे– सूती उद्योग।

जिस उद्योग में एक से अधिक भारी कच्ची सामग्री का प्रयोग किया जाता है ये उद्योग मध्यवर्ती उपयुक्त स्थल पर स्थापित किया जा सकता है।

हल्के तथा मूल्यवान कच्चे मालों का प्रयोग करने वाले उद्योग के स्थानीकरण पर कच्ची सामग्री स्रोत का प्रभाव नगण्य होता है। उन्हें स्वतंत्र उद्योग (Foot Loose Industry) कहा जाता है।

5. शक्ति संसाधन – उद्योगों के संसाधन में शक्ति के साधनों का महत्वपूर्ण योगदान है घरेलू कार्यों में, उपकरणों को चालू करने में उद्योगों को संचार करने में, परिवहन, कृषि में शाक की आवश्यकता होती है कोई भी आधुनिक उद्योग प्रायः उसी स्थान पर स्थापित किया जाता है जहाँ कारखानों को चलाने के लिये कोई उपयुक्त शाविक संसाधन उपलब्ध होता है।

प्रारंभिक काल में औद्योगिक क्रांति तक पशु शकि का प्रयोग परिवहन, कृषि तथा उद्योग में किया जाता है या विकास के साथ साथ मनुष्य को शविक के नये स्रोतों का ज्ञान होता गया और जल के उपयोग से जल चक्की और पवन के उपयोग से पवन चक्की को चलाया जाता था उसके बाद आधुनिक युग में नये–नये स्रोतों तथा क्षेत्रों की खोज की जाने लगी आज वर्तमान में कारखानों में कोयला, पेट्रोलियम, विद्युत, परमाणु ऊर्जा आदि शविक के प्रमुख स्रोत हैं शविक के संसाधनों में जैविक शविक, खनिज शविक, विद्युत शविक, सौर ऊर्जा आदि है।

6. बाजार – बाजार से आशय– उस क्षेत्र के उत्पादित वस्तु की मांग से हैं कच्चे माल के रूप में उत्पादन कार्यों में प्रयुक्त वस्तुओं का

बाजार विस्तृत होने के कारण कच्चे माल के रूप में उत्पादक कार्यों में सीमित बदलाव होता है जहाँ पर जनसंख्या अधिक पायी जाती है बाजार वहीं सीमित होते हैं सामान्यतः माँग क्षेत्र या बाजार में उसके समीप ही स्थापित किया जाता है जैसे– वस्त्रों की सिलाई, कढ़ाई, बुनाई आदि।

अतः जहाँ उद्योग स्थापित होते हैं वहीं बाजार विस्तृत होता है।

7. परिवहन के साधन – उद्योगों की उपस्थिति में परिवहन भी महत्वपूर्ण भूमिका है उद्योगों में प्रयुक्त होने वाली कच्ची सामग्री को परिवहन द्वारा ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं परिवहन के अभाव के बिना बड़े उद्योग स्थापित नहीं हो सकते बड़े उद्योगों के लिये सुगम मार्गो का (परिवहन) का होना आवश्यक है जैसे– रेलमार्ग, सड़क मार्ग व जल मार्ग। भारी उद्योगों के लिए रेलमार्ग की आवश्यकता होती जबकि हल्के उद्योग सड़कों के मार्ग द्वारा भी आसानी से संचालित हो सकते हैं।

8. प्रौद्योगिकी– औद्योगीकिकरण पर प्रौद्योगिकी का विशेष प्रभाव पड़ता है विकसित देशों में उच्च तकनीकों का विकास हुआ है आधुनिक उद्योगों में नवीन तथा उन्नत तकनीकों के प्रयोग से उत्पादन की मात्रा

में वृद्धि कर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है विकसित तकनीक ही आधुनिक औद्योगीकरण का आधार है।

9. जलापूर्ति – कुछ उद्योगों में जल की कम आवश्यकता पड़ती है जबकि कुछ उद्योगों में जल की अधिक आवश्यकता पड़ती है जैसे– विभिन्न प्रकार के वस्त्र उद्योग अतः विशेष प्रकार के स्थानीकरण पर जल की आपूर्ति का महत्वपूर्ण प्रभाव पाया जाता है।

10. सरकारी नीति एवं निर्णय– उद्योगों की स्थापना में सरकारी नीतियों एवं उनके निर्णयों का महत्वपूर्ण स्थान है सरकार उद्योग के स्थापित होने व उत्पादन होने पर कर का भुगतान करवाती है देश के संतुलित विकास के लिये पिछड़े हुये क्षेत्रों में सरकार स्वयं उद्योग स्थापित करती है।

11. उद्योग के स्थानीकरण के अन्य तत्व – उद्योगों के स्थानीकरण में अनेक तत्व जैसे– अपशिष्ट निष्तारण सामाजिक प्रवृत्ति, जलवायु उल्लेखनीय है अधिक भूमि का उपयोग करने वाले उद्योग नगरीय सीमा से बाहर स्थापित किये जाते हैं ये उद्योग एक से अधिक भी हो सकते हैं जिसके कारण इनमें एकत्रीकरण की भावना पैदा होती है और ये उद्योगों के कुछ कार्य भी एक साथ करते हैं।

बेबर का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धांत –

(Industrial Location Theory of Weber) – किसी उद्योग या कारखाना को स्थापित करने के लिए स्थान के चुनाव की समस्या सर्वप्रमुख होती है कोई भी पूंजीपति या उद्योगपति अपना उद्योग नहीं स्थापित करना चाहते हैं जहाँ पर सारी सुविधायें प्राप्त हो जैसे– उपयुक्त भूमि परिवहन की सुविधा, माल को (कच्चे माल) एक स्थान से दूसरे स्थान पर न्यूनतम लागत हो इस प्रकार सर्वोत्तम सिथति वह है जिसमें उद्योगों से लाभ प्राप्त हो। इन्हीं समस्याओं के निवारण के लिये अल्फ्रेड बेबर का सिद्धांत सर्वप्रमुख है।

अल्फ्रेड बेबर एक जर्मन अर्थशास्त्री थे जिन्होनें उद्योगों की उपस्थिति का सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसका प्रकाशन 1909 में जर्मन भाषा में लिखित पुस्तक अबर स्टान्डोर्ट डर इण्डस्ट्रियल में प्रकाशित हुआ।

सिद्धांत की मान्यताऐं– बेबर ने अपने उद्योगों की उपस्थिति का सिद्धांत के प्रतिपादन के लिये कुछ मान्यताओं का सहारा लिया जो नि.लि. है।

1. कारखाना (उद्योग) की स्थापना के लिए प्रस्तावित क्षेत्र या प्रदेश एक ही प्रशासन के अधीन विलग इकाई है जहाँ पायी जाने वाली जलवायु, संस्कृति प्रौद्योगिकी आदि भौगोलिक दशाओं में समानता पायी जाती है।

2. उद्योग की अवस्थिति का विश्लेषण एक ही उत्पादन वस्तु के संदर्भ में किया गया है लगभग समान प्रकार की किंतु भिन्न कणों वाली वस्तुओं को भिन्न वस्तुयें ही माना जायेगा।

3. कच्ची सामग्री के विषय में पूर्ण जानकारी उपलब्ध है।

4. उस भोग स्थानों के विषय में पूर्ण जानकारी है और ऐसे स्थान या बाजार एक दूसरे से अलग बिंदु के रूप में स्थित है।

5. अर्थव्यवस्था स्वतंत्र बाजार पर आधारित है और बाजार में वस्तुओं की आपूर्ति हेतु पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति विद्यमान है।

6. श्रम सर्वत्र नहीं बल्कि कुछ निश्चित प्रदेशों में उपलब्ध है। ऐसे कई स्थान हैं जहाँ पूर्व निर्धारित मजदूरी पर तथा आवश्यक संख्या में श्रमिक उपलब्ध है।

7. कच्चे माल पर निर्मित माल के रूप में वस्तु का परिवहन व्यय केवल भार और मजदूरी के अनुपात में बढ़ता है।

सिद्धांत की व्याख्या– बेवर के अनुसार सर्व प्रयत्न न्यूनतम परिवहन लागत बिंदु का निर्धारण किया जाता है और श्रम तथा एकत्रीकरण से लाभ के प्रभाव पर विचार किया इस सिद्धांत का विश्लेषण दो दशाओं में किया गया।

कच्ची सामग्री का स्रोत और एक बाजार बिंदु की दशा

दो या अधिक कच्ची सामग्री स्रोत और एक बाजार बिंदु की दशा।

प्रथम दशा में उद्योग में एक ही कच्ची सामग्री का प्रयोग होता है जो एक स्रोत से दूसरे स्थान पर जाती है इस स्थिति में उद्योग के स्थापना की नि.लि. सम्भावनायें है।

(1) यदि उद्योग में कच्ची सामग्री का उपयोग होता है तो उद्योग तो कहीं भी स्थापित करने पर (कच्ची सामग्री) के परिवहन में कोई खर्च नहीं होता।

(2) यदि कच्ची सामग्री स्थानीय है तो उद्योग को कच्ची सामग्री के स्रोत अथवा बाजार बिंदु के मध्य उद्योग स्थापित कर दिये जाते हैं क्योंकि लागत अधिकतर समान ही रहती है।

(3) यदि उद्योग में कच्ची सामग्री के स्थान पर मिश्रित पदार्थ का उपयोग होता है तब उद्योग की स्थापना कच्ची सामग्री के स्रोत पर होगी इस पर परिवहन व्यय बहुत ही कम पड़ेगा।

द्वितीय दशा में – इसमें दो भिन्न प्रकार की कच्ची सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। कारखानों की स्थापना निम्न आधार पर की जाती है।

(1) यदि उद्योग में उपयोग में लायी जाने वाली कच्ची सामग्रीयों का दो भिन्न–भिन्न प्रकार की है तो उद्योगों को बाजार बिन्दु पर स्थापित किया जाना अच्छा होगा।

(2) यदि दोनों कच्ची सामग्रीयाँ शुद्ध पदार्थ है तो कारखानों को बाजार केन्द्र पर स्थापित करना लाभप्रद होगा इस स्थिति में दोनों कच्ची सामग्रियों का बाजार केन्द्र पर स्थापित कारखाने तक लाया जायेगा।

(3) यदि उद्योग में सर्व सुलभ पदार्थ और शुद्ध सामग्री का उपयोग होता है तब उद्योग की स्थापना बाजार केन्द्र पर ही होगी इस परिस्थिति में उद्योग की स्थापना व परिवहन लागत न्यूनतम होगी।

(4) जहाँ उद्योग स्थापित होते हैं वहाँ उपस्थिति का निर्धारण तब कठिन हो जाता है जब कच्ची सामग्रियाँ मिश्रित होती है। इस अवस्था को बेबर ने इस प्रकार प्रदर्शित किया।

उदाहरण– कारखाने में दो मिश्रित पदार्थों का उपयोग कच्चे माल के रूप में होता है जो ए व बी बिंदु से प्राप्त होते हैं उत्पादित वस्तु सी को माना है इस रचित में उद्योग तीनों में से कहीं भी स्थापित नहीं हो सकता क्योंकि ए से बी व बी से सी तथा सी से पुनः ए पर लाने में परिवहन लागत व्यय अधिक होगा इसलिये इन तीनों में से कहीं भी उद्योग स्थापित नहीं होगा उद्योग इन तीन स्थितियों के बीच में से स्थापित होना जिसे पी का नाम दिया गया है।

उद्योग की अवस्थिति पर श्रम तथा एकत्रीकरण का प्रभाव–

1. श्रम का प्रभाव (Impact of Labour) बेवर के अनुसार– श्रम कुछ विशेष स्थानों पर ही होता है वह भी अलग अलग स्थानों पर

अलग अलग होता है। श्रम को कम करने के उद्देश्य से उद्घोष वहीं स्थापित किये जाते हैं। जो परिवहन की वृद्धि से उत्तम है परिवहन व्यय की वृद्धि से सर्वोत्तम बिंदु से हटने पर जिन–जिन बिंदुओं पर परिवहन व्यय में समान इकाई वृद्धि होती है उनको मिलाने वाली रेखा को आइसोडोवेन कहते हैं।

एकत्रीकरण का प्रभाव – बेवर ने एकत्रीकरण को तीन भागों में बांटा–

1. उद्योग के विस्तार द्वारा

2. एक स्थान पर एक ही उद्योग के कई कारखानों के स्थापित होने से

3. एक स्थान पर विभिन्न प्रकार के उद्योगों के स्थापित होने से उद्योगों को यदि एक ही स्थान पर (एक से अधिक उद्योग) स्थापित होते हैं वह भी बड़े स्तर पर इस प्रकार स्थापित होने से कई सुविधायें मिल जाती हैं जैसे– तकनीकी सुविधा, निर्मित वस्तु के विक्रय सम्बंधी सुविधा आदि बढ़ जाती है एक ही स्थान पर कई प्रकार के उद्योगों के स्थापित होने से परिवहन के साधन आदि उपलब्ध हो जाते हैं।

निष्कर्ष– उद्योग की उपस्थिति सिद्धांत की व्याख्या के पश्चात बेवर ने निम्न निष्कर्ष निकाला।

1. कच्चे माल के स्रोत पर उद्योग की उपस्थिति अनिवार्य नहीं होती बल्कि वह बाजार अन्य स्थानों पर भी हो सकती है।

2. उद्योग की अवस्यिाति पर परिवहन हृदय के सामान्य स्तर का नहीं बल्कि विभिन्न स्थानों के सापेक्षिक परिवहन व्यय का प्रभाव पड़ता है।

3. उद्योग मिश्रित पदार्थ वाली कच्ची सामग्री की ओर आकर्षित होता है।

4. स्थानीकरण त्रिभुज के भीतर उद्योग उस कच्ची सामग्री के स्रोत पर या उसके समीप स्थापित होगा जिसका सापेक्षिक भार अधिक होता है।

5. अधिक पदार्थ कच्ची सामग्री के स्रोत की ओर तथा कम पदार्थ बाजार केन्द्र की ओर आकर्षित होते हैं।

बेवर के सिद्धांत की आलोचनायें – बेवर की आलोचनायें निम्न हैं।

1. बेवर ने उद्योग की स्थापना का विश्लेषण कच्ची सामग्री के स्रोत तथा बाजार केन्द्र को विरचित बिन्दु मानकर किया है कच्ची सामग्रियो की आपूत्रि विस्तृत क्षेत्र में होती है और उत्पादित वस्तु की मांग भी विस्तृत क्षेत्र में होती है।

2. बेवर के सिद्धांत में अधिकतर परिवहन लागत पर ही ध्यान दिया गया और उत्पादन प्रक्रिया में लगी हुयी लागत पर ध्यान नहीं दिया गया।

3. परिवहन व्यय को पूरी तथा भार का आनुपातिक माना है। अतः अधिक दूरी के लिए परिवहन दर लघु दूरी के परिवहन दर की तुलना में कम होती है।

4. श्रम की आपूर्ति निश्चित मजदूरी पर प्रायः नहीं होती बेवर ने मजदूरी पर श्रम की असीमित आपूर्ति की कल्पना की है। बल्कि श्रमिक किसी विरचित क्षेत्र पर ही नहीं मिलते बल्कि एक स्थान से दूसरे पर प्रयास करते हैं।

इस प्रकार बेवर की कई आलोचनायें हैं।

Industrial Location Theory of Losch

(लाश का औद्योगिक उपस्थिति सिद्धांत)– लाश एक जर्मन अर्थशास्त्री है जर्मन भाषा में लिखित लाश की पुस्तक (Dil Rounliche Ordnung Der Wirschaft) का प्रथम प्रकाशन 1940 में हुआ इसका अंग्रेजी में अनुवाद 1954 में विलियम बोगंलोम ने किया इस बुक का नाम The economics of Location है।

लाश के अनुसार– उद्योगपतियों का मुख्य उद्देश्य उद्योग को उस स्थान पर लगाना होता है जहाँ उद्योग स्थापित होने से उसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो।

लाश की मान्यतायें –

1. लाश ने ऐसे विलग समरूप प्रदेश की कल्पना की है जिसमें धरातलीय स्वरूप, कच्ची सामग्री के वितरण, जनसंख्या वितरण परिवहन की सुविधा सर्वत्र एक जैसी पायी जाती है।

2. समरूप प्रदेश का प्रत्येक उत्पादक और उपभोक्ता अधिकतम लाभ प्राप्त करने का इच्छुक होता है।

3. समरूप प्रदेश में उत्पादन स्थल अभीष्ठतम संख्या में होते हैं।

4. अपादित वस्तु के उत्पादन, आपूर्ति तथा व्यापार के क्षेत्र लघुतम आकार के होते हैं जिसके फलस्वरूप आर्थिक दृष्टिकोण के समर्थ उत्पादकों की संख्या अधिकतम होती है।

5. बाजार में बहुत प्रतियोगितायें रहती हैं जिससे लाभ का पूर्ण ज्ञान नहीं होता।

6. बाजार पोत्र की सीमा पर स्थित उपभोक्ता निकटतम उत्पादकों में से किसी से भी वस्तु क्रय करने हेतु तत्पर होता है।

सिद्धांत की व्याख्या – लाश के सिद्धांत की व्याख्या निम्न द्वारा समझ सकते हैं।

1. लागत आधारित अवस्थिति

2. कुल प्राप्ति आधारित अवस्थिति

3. लाभ आधारित अवस्थिति

1. लागत आधारित अवस्थिति – किसी वस्तु के उत्पादन में जो व्यय होता है उसे लागत कहते हैं। इसके अंतर्गत मूल्य, कच्चे माल को

इकट्ठा करना, श्रम, उपकरण आदि सम्मिलित हैं उद्योग की स्थापना के लिये निम्न तीन प्रकार की लागत का वर्णन किया।

अ) परिवहन लागत आधारित अवस्थिति – इसके अंतर्गत कच्चे माल को एकत्रित करके उद्योग तक पहुंचाने में जो लागत सम्मिलित होती है उत्पादन के अन्य कारकों के सर्वत्र समान होने पर उद्योग की उपस्थिति वहाँ निर्धारित होगी।

परिवहन लागत न्यूनतम होती है–

(1) स्थानीकरण त्रिभुज

(2) यांत्रिक मण्डल

(3) सम परिवहन लागत या आइसोडावेन

(1) स्थानीकरण त्रिभुज– लाश के अनुसार दो कच्चे माल स्रोत तथा समान बाजार की स्थित में कारखानों की उपस्थिति ये तीनों बिंदुओं से निर्मित त्रिभुज के भीतर होगी इस त्रिभुज को स्थानीकरण त्रिभुज कहते हैं। स्थानीकरण त्रिभुज के भीतर जिस स्थान पर परिवहन लागत कम होगी यहीं उद्योग की स्थापना के लिये उपयुक्त स्थान होगा।

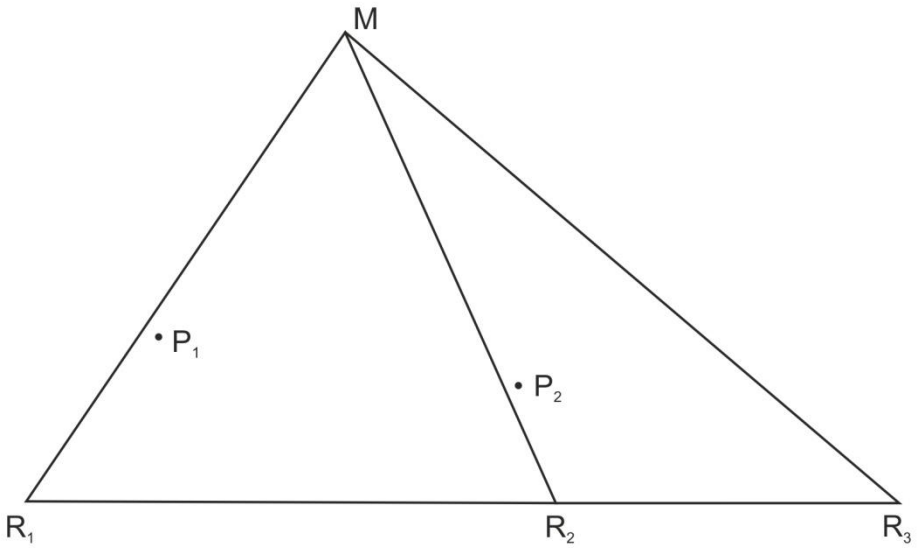

स्थानीकरण का त्रिभुज (लॉश के अनुसार)

M= बाजार बिन्दु R_1 R_2 व R_3 कच्ची सामग्री स्त्रोत

P_1 व P_2 कारखाना स्थल

2. यांत्रिक मॉडल – लाश के अनुसार– किसी क्षेत्र में किसी उद्योग से संबंधित कच्चे माल के अनेक स्रोत और कई बाजार हो तो ऐसी स्थिति में उद्योग की स्थापना वहाँ होगी सभी कारकों के मध्य संतुलन स्थापित होने के परिणामस्वरूप परिवहन लागत न्यूनतम होगी इसके लिये एक यांत्रिक महत्व का प्रयोग किया।

एक कठोर सतह वाले मानचित्र पर इन सभी कारक स्थलों को अंकित करके उनके छिद्र बना दिये जाते हैं कच्चे मालों तथा बाजारों की क्षमता को आनुपातिक भार के रूप में परिवर्तित किया जाता है और धागों पर तत्सम्बंधी भार को लटकाकर उन्हें गांठ से बांध दिया जाता

है वह गांठ जहां लटकती है वह कारखाने की स्थापना के लिये उपर्युक्त स्थान होता है।

इस माडल की व्याख्या– में तीन केन्द्र ए बी सी है जो कच्चे माल के स्रोत क्षेत्र हैं एक टन वस्तु के उत्पादन के लिए इनकी क्रमशः 3, 2 और 0.5 टन की आवश्यकता होती है उस क्षेत्र में डी, ई और एफ तीन बाजार केन्द्र हैं जो उत्पादित वस्तु की क्रमशः 80, 15 और 5 प्रतिशत वस्तु की मांग करते हैं कुल 5.5 टन (3 + 2 + 0.5) कच्चे माल से। टन वस्तु का उत्पादन होता है।

3. श्रम परिवहन लागत रेखायें या आइसाडापेन – आइसोडापेन का प्रयोग बेवर ने औद्योगिक अवस्थिति सिद्धांत की व्याख्या हेतु किया था। इन आइसोडापेन रेखाओं का प्रयोग करा ने भी न्यूनतम परिवहन लागत के बिंदुओं के निर्धारण के लिये किया उदाहरण–

किसी वस्तु के उत्पादन के लिए दो प्रकार के कच्चे मालों का उपयोग होता है जिनके स्रोत ए व बी है।

1 टन उत्पादन के लिए ए स्रोत की कच्ची सामग्री

2 टन उत्पादन के लिए बी स्रोत की कच्ची सामग्री।

प्रयुक्त होती है ए, बी केन्द्र से बाहर की ओर सम किराया दर के वृत्त बनाये गये हैं जो 2 व 1 टन किराये को दर्शाते हैं ए के आन्तरिक वृत्त बी के ब्राहय वृक्षों को और बी के बाहय वृक्ष ए के आन्तरिक वृक्षों को क्रमशः प्रतिच्छेदित करते हैं समान मूल्य वाले प्रतिच्छेदन बिंदुओं को मिलाने वाली रेखा को समपरिवहन लागत रेखा (आइसोडापेन) कहते हैं ए और बी के चारों ओर 11 इकाई लागत की सम परिवहन लागत रेखायें बनती हैं वे समपरिवहन वाली रेखायें बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि उद्योग की स्थापना की दृष्टि से सर्वोत्तम स्थल इसी रेखा पर स्थित होगा।

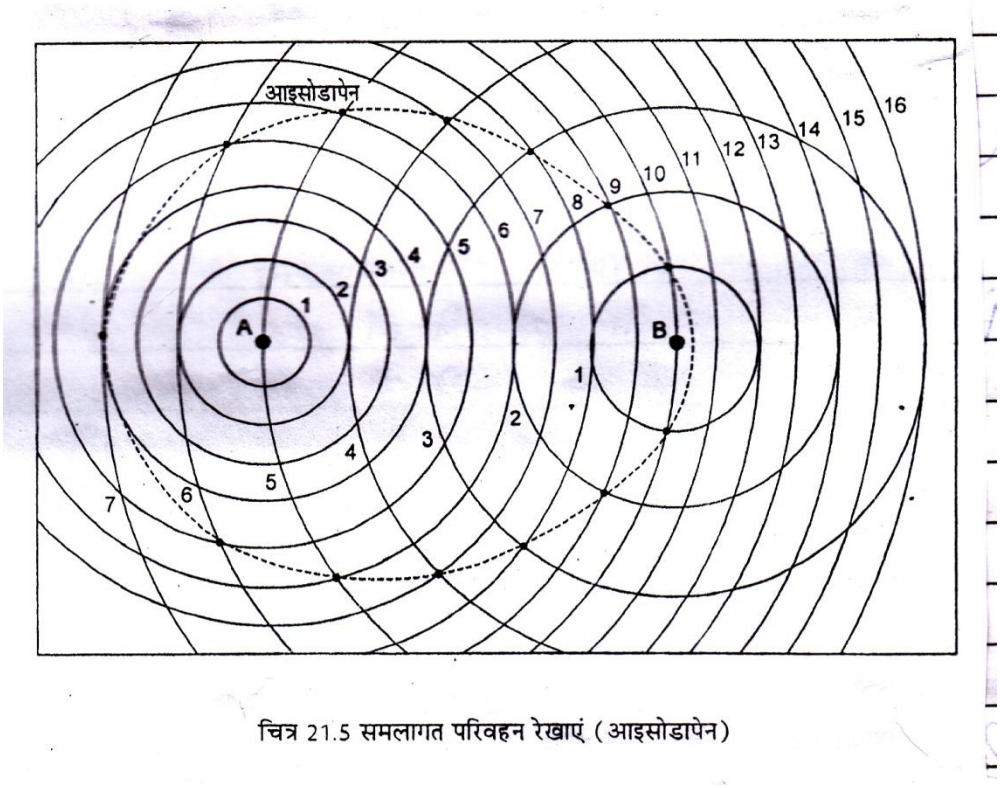

चित्र 21.5 समलागत परिवहन रेखाएं (आइसोडापेन)

न्यूनतम बिंदु का निर्धारण – (परिवहन लागत)

(1) भारी अनुपात (Weight Ratio) – न्यूनतम परिवहन लागतें वाले निर्धारण में कच्चे माल व निर्मित माल वाले भार के अनुपात का बढ़ा महत्व है। उदाहरण के लिये यदि 1 टन कोयले की आवश्यकता होती है यदि कच्चा माल जहां उपलब्ध है वहां पर लोहा उदयोग स्थापित किया जाये तो परिवहन लागत व्यय कम लगेगा इसके दूसरी ओर ठण्डे पदार्थों को बाजार केन्द्र पर ही स्थापित करेगें क्योंकि वे जल की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

(2) विभिन्न बिंदुओं की सापेक्षिक स्थिति – इसके अंतर्गत ऐसी दशाओं को देखा जाता है जिससे न्यून परिवहन लागत की उपस्थिति भी न्यून होती है। विभिन्न प्रकार के उद्योगों में यह स्थिति अलग अलग होती है।

(3) यातायात की दशा – जिस क्षेत्र में परिवहन व्यय न्यून होता है। उस क्षेत्र में अधिक व्यवस्थित यातायात होता है इसलिये यातायात में भारी परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता।

(4) परिवहन मार्गों के मिलन बिंदु – जिस क्षेत्र में उद्योग भिन्न दिशा में होते हैं वहाँ परिवहन का साधन भी निम्न स्थितियों में हो जाता है इसके अलावा माल को लोड करने व उतारने में धन काफी व्यय होता है अतः परिवहन लागत से बचने के लिये उद्योगों को परिहवन मिलन बिंदु पर स्थापित करने से परिवहन लागत का लाभ लिया जा सकता है।

2. उत्पादन लागत आधारित उपस्थिति (Production cost based location) – उद्योग की स्थापना ऐसे क्षेत्र में की जाती है जहाँ पर उत्पादन लागत न्यूनतम हो, उत्पादन लागत को श्रम की उपस्थिति एवं मजदूरी दर, एकत्रीकरण की सुविधायें प्रभावित करती है अतः उद्योगों को कच्चे माल जहां हो वहीं स्थापित किया जाना चाहिये जिन उद्योगों में शीघ्र नष्ट होने वाले, टूटने–फूटने वाले और असुविधाजनक परिवहन वाले कच्चे मालों का प्रयोग होता है।

3. कुल लागत आधारित उपस्थिति (Total Cost Based Location) – कुल लागत के अंतर्गत परिवहन लागत, कच्चे माल का एकत्रीकरण श्रमिकों की मजदूरी, पूँजी के लिए दिया गया ब्याज आदि आधारित है। अतः पूँजीपतियों का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्रदान

करना होता है अतः वह यही चाहते हैं कि उद्योग वहीं स्थापित हो जहाँ पर सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त हो उदाहरण के लिए एक उद्योग में 1 टन उत्पादित वस्तु के लिये 3 टन कच्चे माल की आवश्यकता होती है और ये कच्चा माल उद्योग से दूर होता है अतः हम ये देखेंगे कि कच्चा माल किस स्थान पर है और परिवहन लागत हृदय कितना है यदि परिवहन लागत व्यय कुल लागत हृदय के न्यूनतम है तो उद्योगों को उत्पादन में राहत ही प्राप्त होगी।

ब) कुल प्राप्ति आधारित उपस्थिति (Total Receipt Basd Location) – किसी उद्योग को उसी स्थान पर आधारित होना चाहिए जहाँ कारखाना स्थापित करने से सर्वाधिक आय प्राप्त हो अधिकतम आय की दृष्टि से दो स्थितियाँ निम्न हैं।

सुविधाजनक बाजार

अधिकतम कुल पारित के विशिष्ट स्थल

उद्योग की स्थापना लाभ प्रदान करने वाले बाजार केन्द्र पर ही की जा सकती है।

कुछ उद्योगों की कोई विशिष्ट उपस्थिति नहीं होती है तथा उसे बाजार क्षेत्र में कहीं भी स्थापित किया जा सकता है ऐसी स्थिति बहुत कम पायी जाती है।

स) लाभ आधारित अवस्थिति (Profit Based Location)– उद्योगपति ऐसे स्थान पर उद्योगों को लगाना चाहता है जहाँ पर उसे अधिक लाभ प्राप्त हो इसके लिये आवश्यक है कि वह ऐसी जगह का चुनाव करता है जहाँ पर आवश्यक है कि वह ऐसी जगह का चुनाव करता है जहाँ पर कच्ची सामग्री आसानी से उपलब्ध हो सके इसके अलावा वस्तुओं के विक्रय द्वारा अधिकतम आय की प्राप्ति सम्भव हो इस प्रकार कारखाने की सर्वोत्तम उपस्थिति उस बिंदु पर होगी जहाँ कुल प्राप्तियों और लागत का अंतर अधिकतम धनात्मक होगा इसलिये

लाभ = कुल प्राप्ति – लगात

ईजार्ड का औद्योगिक अवस्थिति सिद्धांत –

(Industrial Location Theory of Isard)– वाल्टर ईजार्ड 1856 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ‘‘Location And Space Economy’’ में आर्थिक कार्यों के सिद्धांत का प्रतिपादन किया ईजार्ड ने बेवर एवं लाश

के सिद्धांत व वान थ्यूनेन के कृषि अवस्थिति सिद्धांत का समन्वय करके औद्योगिक अवस्थिति के सिद्धांत की व्याख्या प्रस्तुत की।

ईजार्ड के अनुसार– स्थानापन्न का विचार प्रस्तुत करते हुये उद्योग की सर्वोत्तम स्थिति सर्वाधिक प्रभावशाली घटक वाले स्थल पर मानी जाती है किन्तु दूसरे स्थल पर दूसरे कारक के महत्वपूर्ण होने पर वहाँ कुल लाभ अधिकतम होने की संभावना होती है तब उद्योगपति दूसरी जगह पर ही उद्योग स्थापित करेगें इसलिये ईजार्ड के सिद्धांत को स्थानापन्न का सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। ईजार्ड ने बेवर एवं लाश की भाँति अपने उपस्थिति के सिद्धांत की व्याख्या जो निम्न प्रकार है।

सिद्धांत की व्याख्या –

1. कच्चा माल जहाँ सर्वाधिक होना वर्ष पर उद्योग स्थापित होगा किंतु यातायात का सस्ता साधन होने पर कच्चे माल को इकट्ठा करके बढ़ते खर्च का स्थानापन यातायात से प्राप्त बचत के द्वारा कर दिया जाता है।

2. जब कच्चा माल कई जगहों पर हो तब उद्योगों के लिये कच्ची सामग्री कहीं से भी मँगायी जा कसती है।

3. जब एक ही स्रोत पर विद्यमान कच्चे माल के अलावा अलग स्थानों पर स्थित कई कारखानों पर से जाया जाता है ईजार्ड ने भी अवस्थिति का निधारण अवस्थितिक त्रिभुज की सहायता से दर्शाया–

अक्ष पर बाजार से दूरी तथा लम्बवत अक्ष पर बाजार से दूरी प्रदर्शित की आर बिंदु कच्चे माल को और एम बिंदु बाजार से दूरी को दर्शाता है। कच्चे माल की स्रोत से दूरी बढ़ने पर बाजार से दूरी घटती है इस प्रकार आरएम रेखा दोनों बिंदुओं से समान यातायात व्यय को दर्शाती है। अतः उद्योग को त्रिभुज (Rom) के भीतर किसी बिंदु पर स्थापित करना ही लाभदायक होगा।

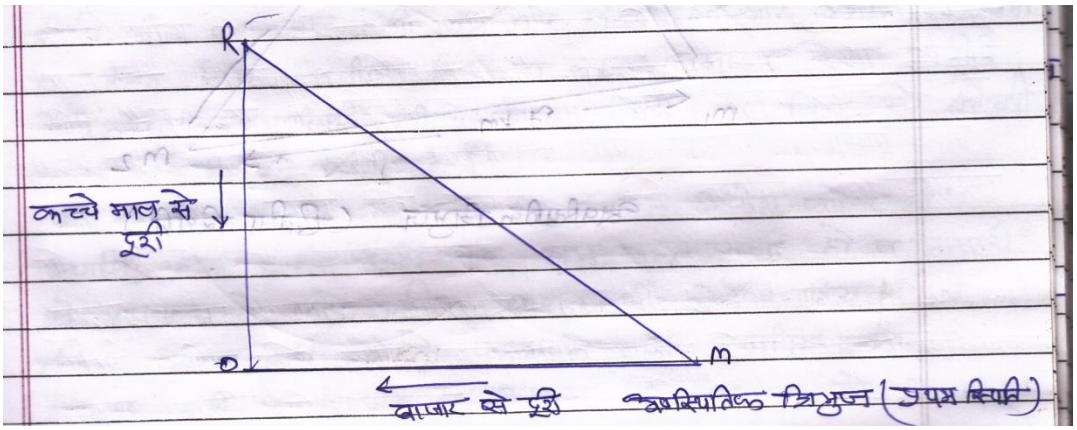

यातायात स्थानापन्न

1. प्रथम स्थिति – विनिर्माण उद्योग में प्रयुक्त कच्चा माल बहुत आवश्यक है कारखाना वहीं स्थापित होगा जहाँ पर कच्चा माल प्रचुर मात्रा में होगा।

2. द्वितीय स्थिति – इसके अंतर्गत ए कच्चा माल बी कच्चा माल, दो कच्चे माल हैं कारखानों के उपस्थिति के निर्धारण के लिये अवस्थितिक त्रिभुज की सहायता लेते हैं।

C = बाजार केन्द्र

M_1 = प्रथम कच्चा माल

M_2 = द्वितीय कच्चा माल

बाजार केन्द्र सी को 3 कि.मी. पर स्थापित करना है जिस पर उद्योग को कहीं भी स्थापित किया जा सकता है–

अवस्थिति का त्रिभुज

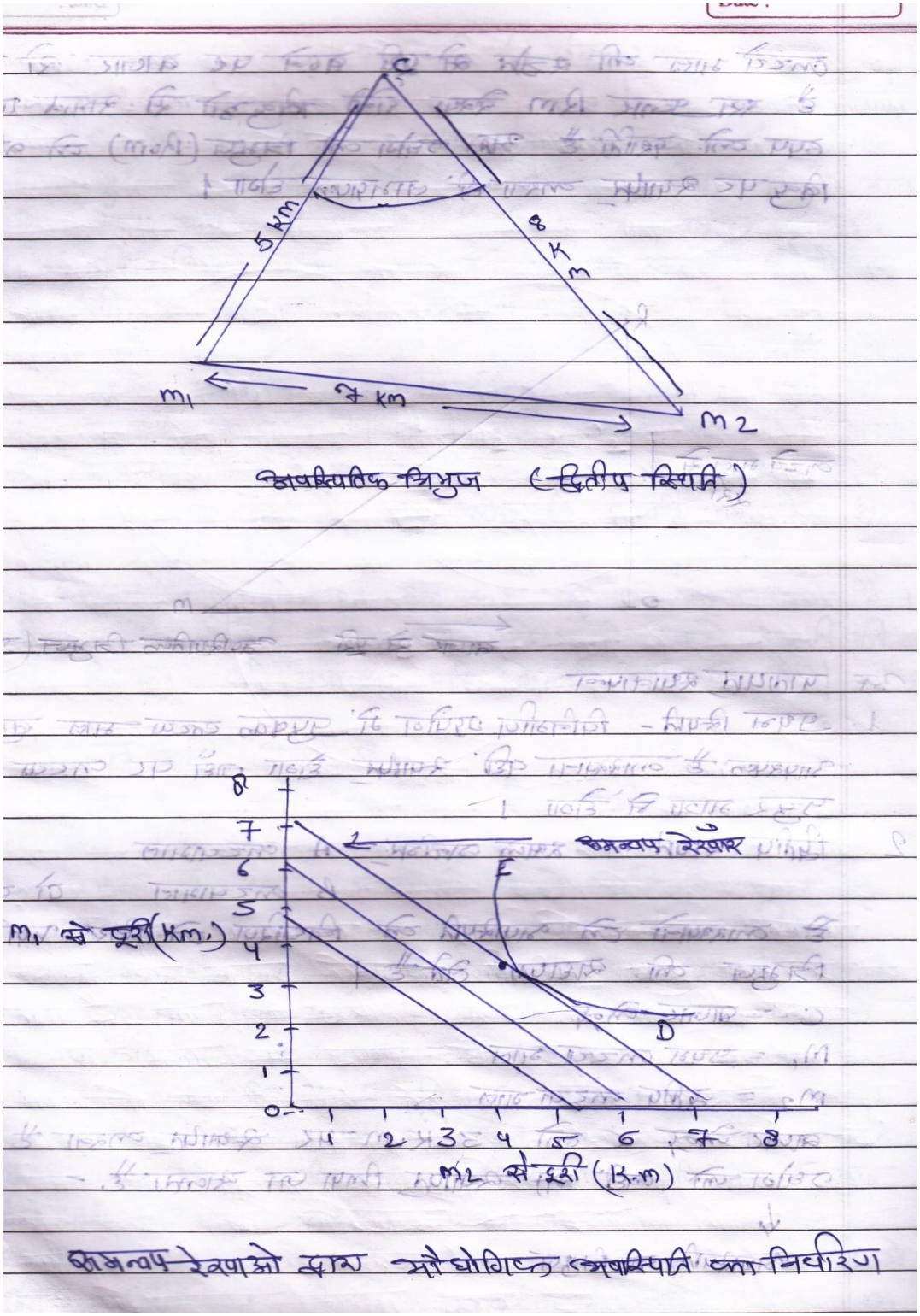

C
5 km
8 Km
m1
7 km
m2
अवस्थितिक त्रिभुज (द्वितीय स्थिति)
समन्वय रेखाएँ
E
D
m1 से दूरी (Km.)
m2 से दूरी (K.m)
समन्वय रेखाओं द्वारा औद्योगिक अवस्थिति का निर्धारण

उद्योग की स्थिति के निर्धारण को वृत्त खण्ड के द्वारा सम का सकते हैं दूरियां कच्चे माल के स्रोत के रूप में दिखाई गई है M_1 M_2 उपस्थिति की दूरी, ई डी रूपान्तरित, रेखा, जिसके ई बिन्दु से डी की ओर बढ़ने पर बिंदु M_1 से दूरी कम होती जाती है। किंतु यह दूरी M_2 से बढ़ती जाती है परिवहन लागत रेखाओं के द्वारा प्रदर्शित किया गया है इस प्रकार ग्राफ पर खींची गई रेखायें सीधी और समानान्तर होगी तथा बायें से दाहिनी ओर झुकी हुई होगी वक्र रेखा ईडी के जिस बिंदु पर न्यून समव्यय रेखा स्पशीर्ष होगी औद्योगिक अवस्थिति की यह आदर्श स्थिति सी बिंदु से ली गयी काल्पनिक पूरी यह आधारित है।

ब) श्रम स्थानापन्न – ईजाड्ड के अनुसार– उद्योग को वहीं स्थापित होना चाहिए जहाँ पर श्रम बहुत सस्ता हो व आसानी से उपलब्ध हो जाये श्रमिक कुशल भी होने चाहिए। यदि श्रमिक कुशल नही होंगे तो कारखाने को स्थापित करना वाम्रप्रद नहीं है अतः स्थानापन्न के सिद्धांत के आधार पर उद्योग नहीं स्थापित होगा जहाँ पर पाम सस्ता व कुशल हों।

स) एकत्रीकरण तथा उद्योग की उपस्थिति – ईजार्ड के अनुसार– उद्योग की अवस्थिति का निर्धारण चित्र के माध्यम से स्पष्ट होता है। उन्होनें मानलिया के एक द्वीप का उदाहरण किया वहाँ पर लोह अयस्क का प्रचुर भण्डार है जिन देश अपनी–अपनी शोधन शालाऐं स्थापित करके खनिज को साफ करके उद्योग लगाना चाहते हैं जिन्हें P_1, P_2, P_3 का नाम दिया गया R_1, R_2, R_3 तीनों देशों की शोधन शालाऐं हैं यदि इन तीन उद्योगों को एकत्रीकरण करके एक ही जगह पर स्थापित किया जाये तो अधिक लाभ प्राप्त होगा इस अवस्थिति का निर्धारण तीन समपरिवहन रेखाओं के प्रतिच्छेदन द्वारा ज्ञात होता है।

अतः हम कह सकते हैं कि A_1, A_2, A_3 के भीतर ही कहीं उद्योग को स्थापित करना चाहिए जिससे कच्चे माल को लाने ले जाने में परिवहन के अलावा भी लाभ प्राप्त हो।

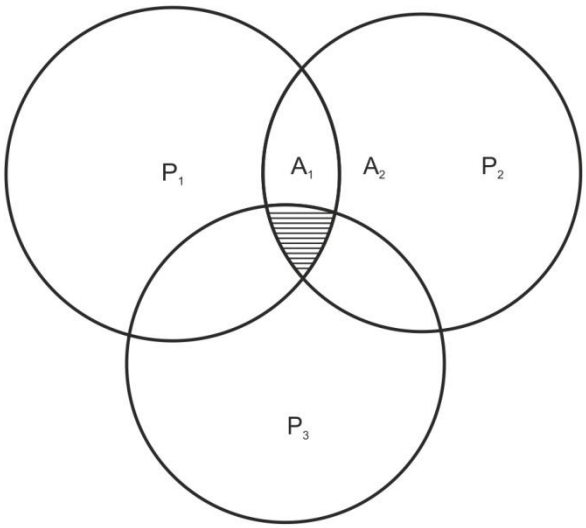

उद्योग की अवस्थिति पर एकत्रीकरण का प्रभाव

सिद्धांत का मूल्यांकन – ईजार्ड ने कच्ची सामग्री स्रोत और बाजार केन्द्र को निश्चित बिंदु मानकर लिया जाता है किन्तु जो उत्पादन वस्तु की मांग है उसके क्षेत्रीय विस्तार पर ध्यान नहीं दिया गया, उन्होनें कल्पित मान्यताओं पर अधिक जोर दिया, इस सिद्धांत में परिवहन लागत पर जोर दिया गया उत्पादन प्रक्रिया पर जोर नहीं दिया गया उसका महत्वपूर्ण स्थान है।

अतः कई दोषों के बावजूद भी ईजार्ड का सिद्धांत उद्योग की अवस्थिति (स्थानीकरण) के क्रमबद्ध विश्लेषण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

लौह एवं इस्पात उद्योग –

(Iron and Steel Industry) – उद्योग जगत में लौह एवं इस्पात् उद्योग महत्वपूर्ण है जिसके द्वारा वस्तुओं का उपयोग कच्चे माल के रूप में किया जाता है लोहा विश्व के लगभग सभी भागों में अधिक मात्रा में उपलब्ध है। उद्योगों में मशीनों का निर्माण व अन्य निर्माण लोहे के माध्यम से ही होते हैं विश्व में उत्पादित होने वाली सम्पूर्ण धातुओं की दुर्बल मात्रा या भाग लोहे का है।

भारत में प्राचीन काल से ही लौहे का उपयोग किया जाता था और आज भी अधिक मात्रा में किया जाता है लोहे से ही कई वस्तुओं का निर्माण संभव है। बाद में लोहा गलाने के लिए भट्टियों को कोयले से निर्मित कोक (Coke) का प्रयोग किया जाने लगा।

इस्पात प्रक्रिया का निर्माण – लोहे को एक विशेष प्रकार की भट्टी में भरकर उच्च ताप पर पिघलाया जाता है। लौह भट्टी एक बेलनाकार भट्टी होती है जिसकी दीवारें प्रायः बलुआ पत्थर से बनाई जाती है इस भट्टी में लोहा चूना आदि उचित मात्रा में भरकर नीचे से कोयला या कोक जलाकर अत्याधिक गर्म ($1500^{0}C$) किया जाता है। जिसके कारण धातु गलाकर अलग हो जाती है। कच्चा लोहा या लौहे का

पिण्ड बनाया जाता है अतः कच्चे लोहे में लौह अयस्क, चूना पत्थर, कई धातुऐं मिलाकर पुनः गर्म किया जाता है और इस्पात तैयार होता है लौहे के गलाने की इस प्रक्रिया निम्न प्रक्रमों द्वारा सम्पन्न होती है।

1. लौह अयस्क को पिघलाकर भट्ठी से कच्चे लोहे का निर्माण करना।

2. कच्चे लोहे को अलग करके लौह पिण्ड को तैयार करना।

3. कच्चे या लौह पिण्ड को गलाकर उच्च श्रेणी का इस्पात बनाना।

4. इस्पात को रोलिंग मिल में ढालना, पीटना और काटना।

लोहा एवं इस्पात उद्योग का स्थानीकरण –

लोहा इस्पात कारखानों को स्थापित करने से पहले निम्न पर विचार करना आवश्यक है।

1. कच्चे माल को एकत्रित करने की लागत

2. कच्चे माल को एकत्रित करने की लागत

3. लोहे से निर्मित वस्तुओं को बाजार में पहुँचाने की लागत भारती वस्तुओं के परिवहन में लागत का भी असर पड़ता है जैसे–

अ) कच्चा माल – कच्चा लोहा तैयार करने के लिए लगभग लोह अयस्क, कोयला, चूना पत्थर आदि की आवश्यकता पड़ती है लोह अयस्क कोयले की तुलना में खनिज लौह अधिक लगता है इस कारण लौह इस्पात का उद्योग परिवहन व्यय की दृष्टि से लौह अयस्क की खदान के समीप स्थापित करना सुविधाजनक होता है। लौह इस्पात के उद्योग में कोयला भी अधिक मात्रा में जलता है अतः स्पष्ट है कि इन कारखानों को कोयले की खदानों के निकट स्थापित करना चाहिए।

ब) बाजार – लोह इस्पात उद्योग में प्रयुक्त होने वाला कच्चा माल भी अधिक लगता है और परिवहन भी अधिक लगता है। इस कारण हमें उद्योगों को ऐसी जगह स्थापित करना चाहिए जिसमें परिवहन काफी सस्ता हो व साधन उपयुक्त हो अतः उद्योगों को बाजार केन्द्र के आसपास ही स्थापित करना चाहिए।

स) शक्ति – उद्योगों में लोहे को गलाने के लिये कई प्रकार के खनिज, कोक कोयला आदि शक्ति के संसाधनों की आवश्यकता पड़ती

है और इसके अलावा उच्च विथुक शविक का भी प्रयोग किया जाता है।

द) पूंजी – लोह इस्पात के उद्योग स्थापित करने के लिये अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है पर्याप्त पूंजी विकसित देशों के पास ही उपलब्ध है विकासशील देशों में जैसे भारत ब्राजील, कारखाने विकसित देशों की मदद से मिलकर ही संचालित हो रहे हैं।

एशिया के टोफियो, पाकोहामा, फोमो, मोसाफा, संघाई, मनीला आदि आएफोलिया – न्यूजीलैण्ड के सिडनी पश्चिमी उत्तरी अमेरिका के सेनफ्रासिस्को, पोर्टलैण्ड आदि है।

ण्ि कैरोविपन सागरीय मार्ग– कोलंबिया, वेनेजुएला, फिनिडाड, गापना, सूरीनाम, पश्चिमी द्वीप समूह मैक्सिको की खाडी, सदुवक राज्य अमेरिका के मध्य इस मार्ग से वस्तुओं का आदान प्रदान होता है यह लघु दूरी का समुद्री मार्ग है इसके अन्तर्गत चीनी, फोको, नारियल कहवा, सब्जियां, लकडी, प्रॉकोल, गंधक लौह अयस्क आदि खनित निर्यात किये जाते है।

हण् दक्षिणी अटंलाटिक मार्ग– यह मार्ग दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी पूर्वी तटीय बन्दरगाहों को जोडता है। रिपो जनेरो, सैन्टीय मान्हीविडियो,

वाहिपा ढलाका इस मार्ग के प्रमुख बन्दरगाह है। पूर्वी तटीय पतनो से गेहूं, मक्का, ऊन, चमड़ा, कपास, कहवा, तम्बाकू चीनी, मैंगनीज, अभ्रक, बॉक्साइट, टंगस्टन आदि खनिज पदार्थो का भी प्रचुर मात्रा में निर्यात होता है।

3. परिवहन नहरें– संकीर्ण स्थलीय भाग को कहकर नहरों को बनाया जाता है। जिन्हें परिवहन नहरें कहा जाता है। ये दो प्रकार की है।

1. स्वेज नहर 2. पनामा नहर

स्वेज नहर– विश्व की सबसे महत्वपूर्ण नहर है यह नहर भूमध्य सागर और लाल सागर के मध्य स्थित है स्वेज नहर के उत्तरी छोर पर पोर्ट सईद और दक्षिणी छोर पर पोर्ट स्वेज स्थित है इन दोनों पतनों के मध्य में तीन झीले स्थित है, जिनके बीच के स्तर को काटकर उन्हें मिला दिया जाता है सबसे उत्तर में भूमध्य सागर से संलग्न **मेन्जाला** झील है जिसके उत्तरी तट पर **पोर्ट सईद** स्थित है। इसके दक्षिण में ग्रेट षिटर और लिटिल षिटर झीले हैं जो लाल सागर के निकट है पोर्ट सईद के दक्षिण मेन्जाला झील को पार करती हुयी यह नगर **अलकन्तारा, अलफिरदान** और इस्माइलिया से होती हुई पहले ग्रेट बिटर झील और फिर लिटिल बिटर झील में प्रवेश करती है।

नहर के पश्चिमी तट पर स्वेज और पूर्वी तट पर टौटीक समुद्र पतन स्थित है। स्वेज नहर में जल को नियन्त्रण करने`क लिये किसी सेतु या फाटक की आवश्यकता नही होती।

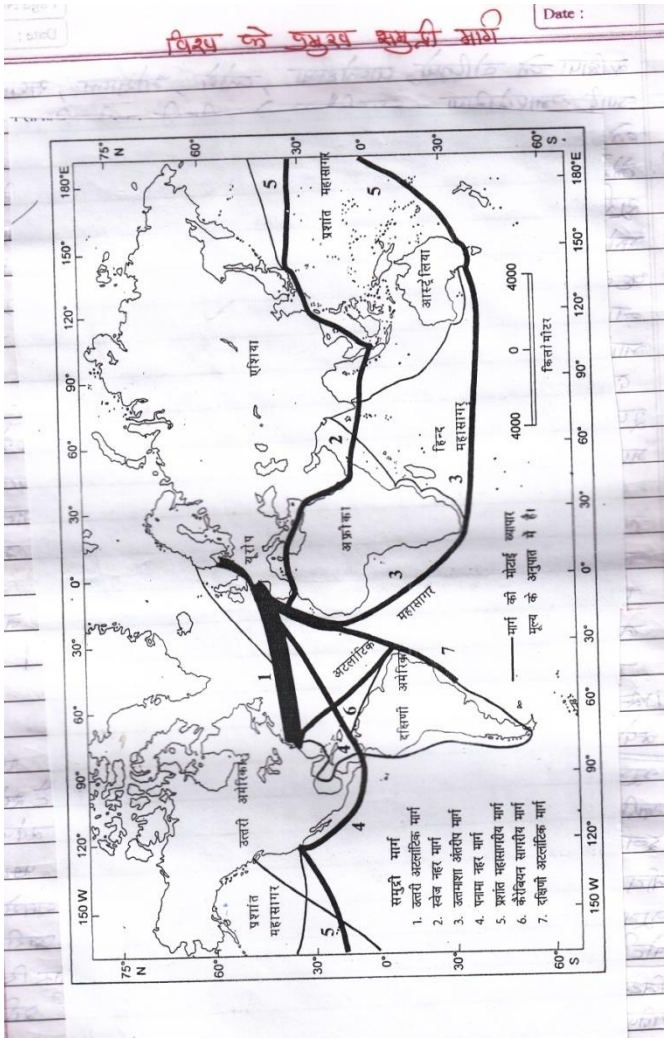

स्वेज नहर का महत्व– आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड भी स्वेज मार्ग को बराबर उपयोग करते है यहाँ से गेहूं, ऊन, मास व खनिज पदार्थ एवं डेयरी पदार्थ बेचे जाते है। यूरोप व अमेरिका की ओर से मशीने,

रसायन उच्च तकनीक का माल, वाहन, इस्पात, सुरक्षा सामाग्री आदि को पूर्व देशों को भेजा जाता है। स्वेज नहर द्वारा व्यापार आसानी से होता है और आप में वृद्धि होती है। स्वेज नहर से राष्कीय बजट का 10 प्रतिशत आप प्राप्त होती है।

स्वेज नहर

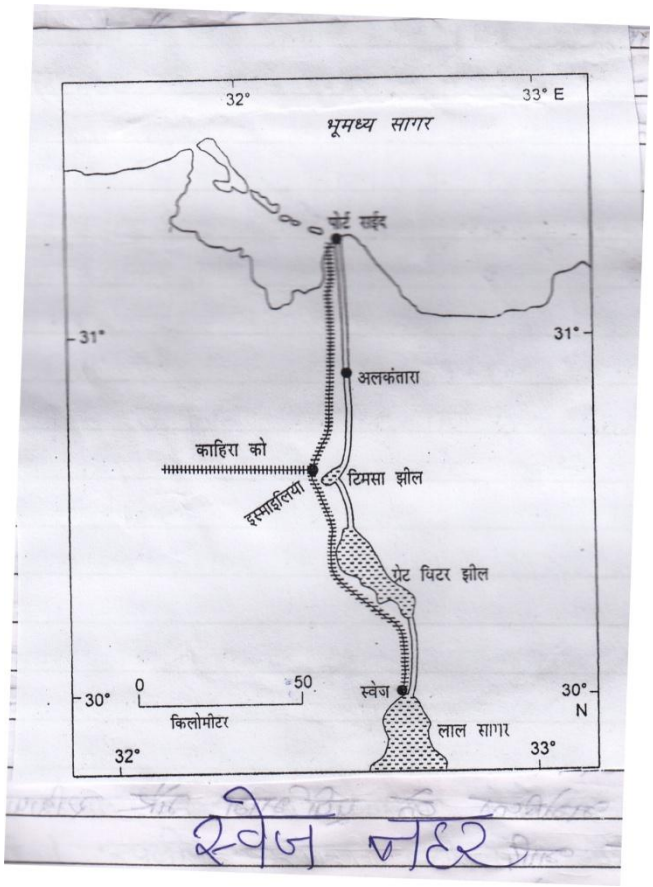

2. पनामा नहर (च्दंउं ब्दंस) पनामा नहर अटलांटिक महासागर और प्रशांत महासागर को मिलाती है इसका निर्माण प्रशांत महासागर और अटंलाटिक महासागर को मिलाती है। इसका निर्माण उत्तरी अमेरिका

और दक्षिणी अमेरिका के मध्य स्थित पनामा स्थल सन्धि को काटकर किया जाता है। पनामा नहर का क्षेत्र पहाडी होने के कारण कठोर है। इसके जल मे भयानता पाये जाने के कारण लॉक्स बनना भी अनिवार्य था। इस नहर में जिन स्थानों पर जल को नियन्त्रित करने के लिए लॉक्स बने है।

अ. मार्टून लॉक्सु ब. पैडरो लॉक्स स. मिराफलोर्स लावस

मार्टून लाक्स अटंलाटिक छोर पर प्रशांत तट पर व पैडरो लाक्ब्स मध्य में स्थित होता है।

पनाया नहर का महत्व– इस नहर के बन जाने से सबसे अधिक लाभ संयुक्त राज्य अमेरिका को हुआ है। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड एवं पूर्वी एशियाई देशों से इस नहर द्वारा रबड गर्म मसाले अनेक वस्तुएं ऊन, गेहूं, चावल, तम्बाकू आदि उत्तरी व लेटिन अमेरिका के पूर्वी भागों को अनेक प्रकार का सामान संयुक्त राज्य कनाडा के पूर्वी भाग और पश्चिमी यूरोप भेजे जाते हैं। अटंलाटिक से प्रशांत सागर को जो व्यापार होता है उससे गन्ना, तम्बाकू और केला पश्चिमी द्वीप समूह

से यूरोप भेजी जाती है। पनामा नहर से होकर जिन क्षेत्रों में व्यापार में वृद्धि हुई वह निम्न है।

1. संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग और पश्चिमी भाग

2. संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी व दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी भाग

3. संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग और आष्फेलिया व न्यूजीलैण्ड

4. संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग और एशियाई देश जापान, चीन आदि

5. पश्चिमी यूरोप और उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी भाग

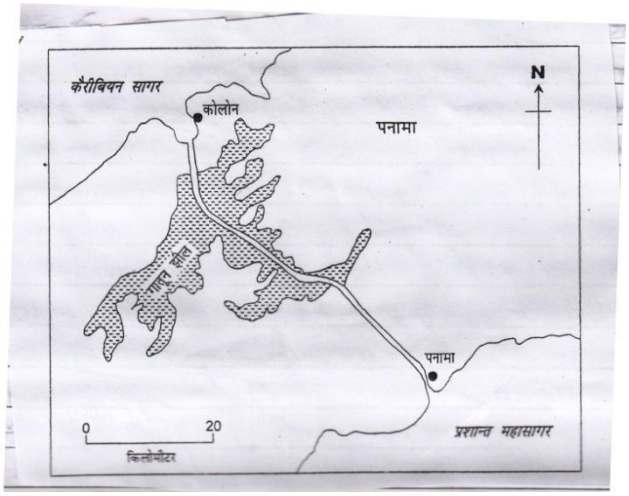

2. स्थल परिवहन

पृथ्वी पर स्थल परिवहन सबसे प्राचीन मध्यम रहा है इसके अन्तर्गत, मानव व पशुओं दोनेा का ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है मानव के द्वारा भार होने का कार्य आज भी किया जाता है। मानव का उपयोग वहीं अधिक होता है जहाँ पर कोई और साधन उपलब्ध नही होते मानव के अलावा पशुओं को भार होने का माध्यम भी बनाया गया घोडा, ऊंट, बैलगाडी के माध्यम से कम विकसित क्षेत्रों में इनका प्रयोग किया जाता था। स्थलीय परिवहन को दो भागो में बांटा है।

अ. रेल परिवहन

ब. सडक परिवहन

स्थल परिवहन के रेलो का सर्वाधिक महत्व है रेलो के प्रारंभ से वर्तमान समय तक निरन्तर सुधार होता गया पहले रेल गाडियां स्टीम इंजन कोयले से निर्मित भाप द्वारा चलते थे विश्व के पहले रेलमार्ग का निर्माण 1835 में इंग्लैण्ड में हुआ था रेलमार्गो के बनने से लम्बी दूरियां का परिवहन सरल हो गया रेल गाडियां यात्रियों के अलावा सामान (भारी सामान) को भी आसानी से कम समय में ही

एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सकती है देश के औधोगिक विकास रेल परिवहन का विशिष्ट योगदान है।

रेल मार्गो को प्रभावित करने वाले कारकः–

1. धरातलीय स्वरूपः– रेलों के लिये समतल धरातल होना आवश्यक है ऊँचे–नीचे, ढालू वाले स्थल आदि मे रेलमार्ग बनाना आसान नही है व खर्चीला है। इसलिये अधिकतर रेलमार्ग समतल मैदानी तथा पठारी भागों से बनाये जाते हैं।

2. आर्थिक विकासः– आर्थिक विकास रेलमार्गो पर कनिष्ठ संबंध है अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में रेलमार्ग का अधिक विकास हुआ है।

3. जलवायुः– जहाँ अधिक वर्षा होती है वहां की भूमि दलदवी होती है। इसलिये रेलो के निर्माण में बडी कठिनाई होती है बाढ से रेलमार्ग टूट–फूट जाते हैं स्टेशन भी डूब जाते हैं भला इन्हें साफ करने में खर्च बढ जाता है इस कारण जलवायु महत्व रखती है।

4. भारी सामानों का परिवहन– दूरवर्ती दोनों से भारी कच्चे मालों को लाने तथा निर्मित सामानों को बाजार तक पहुंचाने के साथ ही

यात्रियों के परिवहन को रेलमार्गो के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

1. रेलमार्गो का विश्व वितरणः– विश्व विभिन्न रेलमार्ग अधिक विषमता वाले है अधिकतर रेलमार्ग, नगरीकृत, उद्योग एवं व्यापार की प्रधानता वाले क्षेत्रों में अधिक होते है विश्व के प्रमुख रेलमार्ग निम्न देशों में है जिनका वर्णन निम्न प्रकार है।

संयुक्त राज्य अमेरिकाः– विश्व का प्रमुख रेलमार्ग संयुक्त राज्य अमेरिका में है परन्तु कुछ वर्षो में कमी आई है देश के कुल रेलमार्ग का लगभग तीन चौथाई 100 पश्चिमी देशान्तर के पूर्व स्थित है इसके तीन प्रमुख रेलमार्ग प्रशान्त तट तक फैले हुये है।

अ. उत्तरी ट्रांस कान्टीनेन्टल रेलमार्ग

ब. मध्य ट्रांस कान्टीनेन्टल रेलमार्ग

स. दक्षिणी ट्रांस कान्टीनेन्टल रेलमार्ग

2. रूसः– रेलमार्ग की दृष्टि से विश्व का दूसरा स्थान है यहां पर जल परिवहन अत्यंत कम है रूस का अधिकांश भाग मैदानी होने खनिज संसाधनों तथा वन संसाधनों के प्रमुख जनसंख्या क्षेत्रों से दूर

होने आदि कारणों से भी रेलमार्गो का अत्याधिक महत्व है विश्व का सबसे लम्बा रेलमार्ग ट्रांस साइबेरिपन रेलमार्ग रूस में स्थित है जो बाहिटक तट पर स्थित लेनिनगाड से आरंभ होकर प्रशांत तटीय पतन बलाडीबोस्टक तक जाता है इसके मध्यवर्ती स्टेशन मास्को, स्वर्डलोवस्क, ओमस्क, नोरोसिवर्रक, इकुटस्क, चीता, रबवारोकस्क आदि।

3. कनाडा– इसका प्रमुख रेलमार्ग संयुक्त राज्य की सीमा के निकट से होकर इसके समानान्तर जाता है रेलमार्ग संकरी पेटी में कनाडा के दक्षिणी भाग मे पाये जाते हैं कनाडा में दो फ्रांस महाद्वीप रेलमार्ग है कैनेडिपन नेशनल रेलवे

कैनेडिपन नेशनल रेलवे

4. भारत– भारत का तीसरा स्थान है (रेलमार्ग की लम्बाई के आधार पर) भारत के उत्तरी मैदान में सबसे अकि सघनता पायी जाती है दक्षिणी भाग में रेलमार्ग अपेक्षाकृत कम है राजस्थान के रेगिस्तानी भागों में रेलमार्गो का अभाव हैं।

5. चीन– अधिकाशं देश पूर्वी भाग में स्थित है मंचूरिया के जेचबान बेसिन में रेलमार्ग की सघनता अधिक है।

6. यूरोपीपक देशों के रेलमार्गः– पश्चिमी यूरोपीय देश बिट्रेन जर्मनी फ्रांस, पौलेण्ड, इटली आदि में संघनता अधिक मिलती है।

7. आस्फेलिया– आस्फेलिया में रेलमार्ग की लम्बाई 40 हजार कि.मी. है इसके पूर्व और दक्षिणी भागों से लम्बे रेलमार्ग है मेलबोर्न, सिडनी प्रमुख पतन है।

8. अन्य प्रदेश– यूरोप में स्पेन और पुर्तगाल, एशिया में जापान और पाकिस्तान, दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील, अर्जेनटिना, पराम्बे वेनेजुएला, चिली और पीरू, अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका में मैक्सिको का अधिक विकास हुआ है। जापान में हांसू, क्यूश और शिफोकू द्वीपों में रेलमार्गो का जाव है।

विश्व के प्रमुख रेलमार्ग–

1. ट्रांस साइबेरिपन रेलमार्ग– यह पश्चिमी भाग में बाष्टिक सागर के तट पर स्थित लेनिनगुड के सुदूर पूर्व में प्रशांत महासागर के तट पर स्थित ब्लाडीबोस्टक नगर तक फैला हुआ है। यह रेलमार्ग साइबेरिया के क्षेत्र में होने के कारण इसे ट्रांस सायवेरियन रेलमार्ग के नाम से जाना जाता है। ट्रांस सायवेरियन रेलमार्ग का प्रारंभ फिनलैण्ड की खाडी के पूर्वी तट पर स्थित प्रमुख समुद्र पतव नेनिनगाड से होता है

पर रेलमार्ग लेनिनग्राड से रूस (मास्को) तक जाता है मास्को एक औधोगिक नगर है। मास्को से चलकर यह मार्ग वोल्गा नदी पर स्थापित **कजान** नगर से होकर यूराल पर्वत के मध्य स्थित **चेलियाबिन्स्क** जक्शंन तक पहुंचता है। इसके बाद रेलमार्ग ओमस्क नगर पहुंचता है जो स्टैपी प्रदेश का मुख्य नगर है उसके बाद **ओबे** नदी पर स्थित **नोवोसिब्रिस्क** नगर को पहुंचता है। मास्को का आर्थिक विकास अधिक होने के कारण दूसरे रेलमार्ग का भी निर्माण होता है इस द्वितीय मार्ग की औद्योगिक महत्ता बहुत अधिक है यूराल के नधन कोयला क्षेत्र को यूराल के महान लोहा क्षेत्र से मिलता है। **इर्फुटस्क** के पश्चात् यह रेलमार्ग **चीता** पहुंचता है चाता के समानान्तर चलकर यही डसूरी नदी पर स्थित **साबरोटस्क** नगर पहुंचता है। दक्षिण में मुडकर **बलाडीवोस्टक** में समाप्त हो जाता है। सायवेरिया से कोयला, लोहा और खनिज पदार्थ वन, पशु, कृषि भूमि आदि का परिवहन साधनों के अभाव में उपयोग नही हुआ यूरोपीय रूस में स्थापित विविध उद्योगों के लिये कच्चेमालों आदि की आपूर्ति सायबेरिया से होती है कृषि यन्त्र निर्मित सामान आदि साइबेरिपाई नगरो को भेजे जाते है इन सब के लिये ट्रांस सायबोर जन रेलमार्ग का प्रयोग होता है। साइबेरिया में बडे बडे सामूहिक कृषि फार्मो के निर्माण,

विकास, जनसंख्या के रिसाब आद का मौलिक अधिकार ट्रांस सायबेरिपन रेलमार्ग ही है।

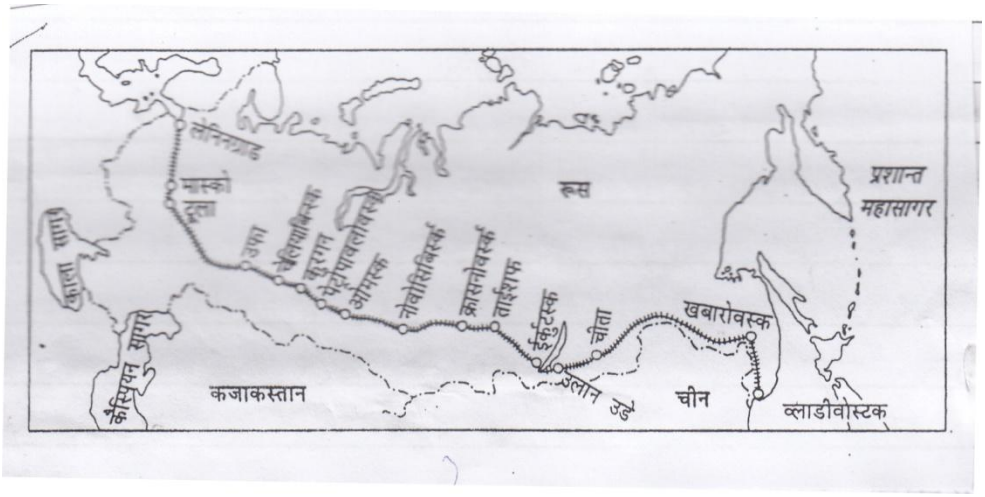

2. कैनेडियपन पैसिफिक रेलमार्ग– यह रेलमार्ग संयुक्त राज्य की सीमा के समान्तर तथा निकह से होता हुआ अटंलाटिक तट से प्रशांत महासागर के तट तक जाता है यह कनाडा का महत्वपूर्ण रेलमार्ग है यह रेलमार्ग पूर्व में अंटलाटिक तट पर स्थित, **हेलीफिक्स** तथा सेनट जान समुद्र पतन एवं नगर से आरंभ होता है और पश्चिम में प्रशांत महासागर के तट पर स्थित **बैकूवर** समुद्रपतन तक जाता है और संयुक्त राज्य के मेन राज्य को पार करकेक **मारिटपल** पहुंचती हैं सेन्ट लारेन्स नदी को पार करने के पश्चात् यह रेलमार्ग कनाडा का प्रमुख औधोगिक केन्द्र भी हैं पश्चिम की ओर बढता हुआ यह रेलमार्ग **सुडबरी** नगर पहुंचता है पश्चिम में भोन्टारिपो पठार पार करने के

पश्चात् **कैनेडिपन पैसेफिक** रेलमार्ग सुपीरियर झील के उत्तर पश्चिम में स्थित पोर्ट आर्थर तथा फोर्ट विलियम तक पहुंच जाता है।

यह कनाडा के दूरवर्ती पश्चिमी और पूर्वी भागों को जोडता है और देश को एक सूत्र में बांधता है। कनाडा में शीत ऋतु में जल हिम से ढंक जाते है उसके बाद भी परिवहन आसानी से चलता रहता है खनिज पदार्थो को व गेहूं उत्पादक डेयरी प्रदेश आरंभ होता हैं यहां पर गेहूं की बहुत बढी खाडी है। इस प्रकार इस रेलमार्ग के मध्य में एक **विनीयेग** एक बडा रेल जक्शंन है। इसके पश्चिम में राम्की पर्वतीय क्षेत्र, आरंभ हो जाता है मेडिसिन घट नगर होते हुये रेलमार्ग राफी पर्वत की तलहटी में स्थित कालगरी नगर पहुंचता है। बाद में यह किकिंग हार्स दर्रे से होकर गुजरता है। कनाडा के अधिकांश बडे महत्वपूर्ण नगर इसी रेलमार्ग पर स्थित है।

3. संयुक्त राज्य अमेरिका के अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग–

इसके प्रमुख तीन अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग है

अ. उत्तरी अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग

ब. मध्य अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग

स. दक्षिणी अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग

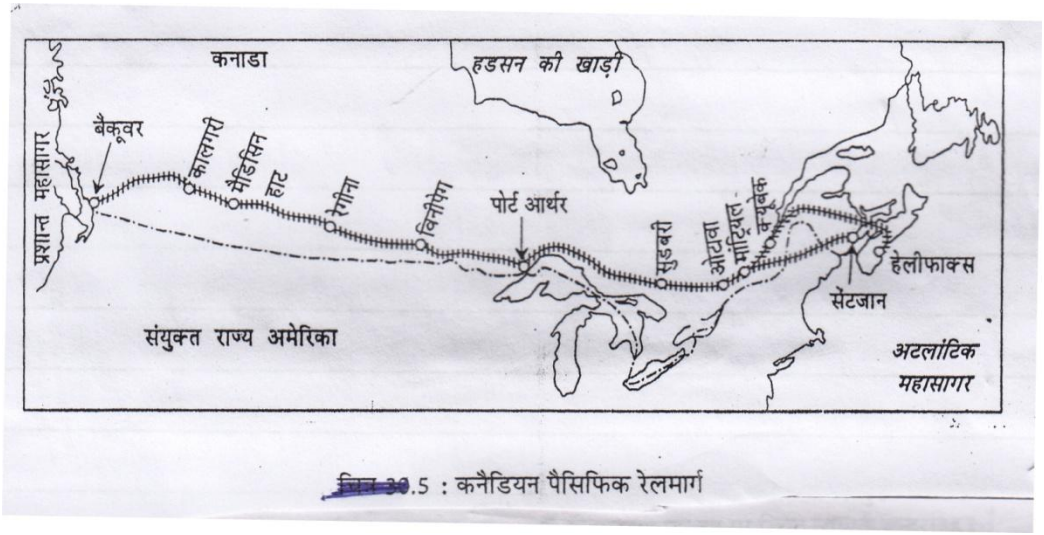

चित्र 30.5 : कनैडियन पैसिफिक रेलमार्ग

अ. **उत्तरी अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग–** यह रेलमार्ग न्यूयार्क नगर से आरंभ होता है और शिकागो होता हुआ प्रशांत महासागर के तटीय पतन **सिएटल** पहुंचता है यह संयुक्त राज्य का सबसे अधिक लम्बा और महत्वपूर्ण रेलमार्ग है और यह **आलेयिशयन पर्वत** को पार करके **पिट्सवर्ग** नगर पहुंचता है उसके बाद मिशिगन झील के दक्षिणी तट पर स्थित विशाल औद्योगिक नगर तथा रेल जक्शंन **शिकागो** पहुंचता है उसके बाद यह **मिलावाउकी** और **मिनिपापोलिस–सेन्टपाल** नगर होते हुये विस्मार्ग नगर पहुंचता है यहां से होता हुआ यह राफी पर्वतमाला की पहाडियो को दर्रो तथा सुरंगो से पार करता हुआ प्रशांत तटीय पतन सिएटल पहुंच जाता है यहां से अनाज, लोहा इस्तपात, मशीन, मांस फल आदि का परिवहन होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के अर्न्त महाद्वीपीय रेलमार्ग

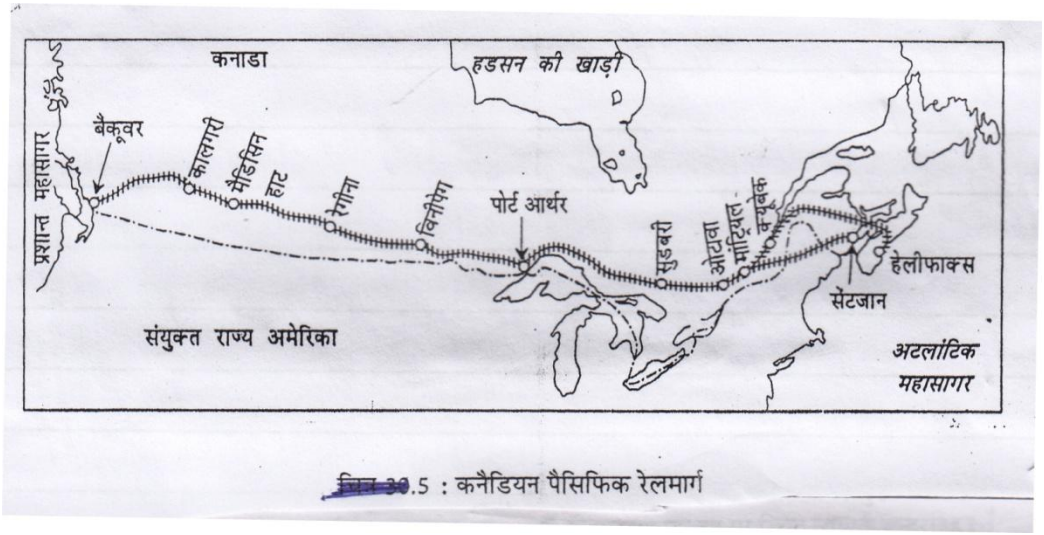

चित्र 30.5 : कनैडियन पैसिफिक रेलमार्ग

ब. मध्य अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग– यह न्यूयार्क नगर से सेन फ्रांसिको को जाडता है लेकिन शिकागो से इसका रास्ता बदला जाता है उसके बाद यह मिसौरी नदी के तट पर स्थित ओमाहा नगर पहुंचता है जहां से भागे प्लाट नदी की घाटी में होते हुये पश्चिम के पठारी प्रदेश में प्रवेश करके चेनी नगर मिलता है। राकी पर्वत के इनान्स दर्रे से होता हुआ यह रेलमार्ग साल्टलेक सिटी पहुंचता है। पश्चिम में सैन्फ्रामेन्टो नगर होते हुये यह रेलमार्ग प्रशांत महासागर के तट पर स्थित सेनफ्रांसिको मे तक सामान होता है।

स. दक्षिणी अर्न्तमहाद्वीप रेलमार्ग– यह रेलमार्ग न्यूयार्क से न्यूआलियन्स से प्रशांत महासागर के तट पर स्थित लास एंजिल्स

नगर तक जाता है। पूर्वी राज्य के बडे–बडे नगर फिलडेलफिया, बाल्टीमोर, वाशिगंटन इसी मार्ग पर स्थित है।

4. **<u>आस्फेलिपन अर्न्तमहाद्वीपीय रेलमार्ग</u>**–

आस्फेलिया के रेलमार्ग

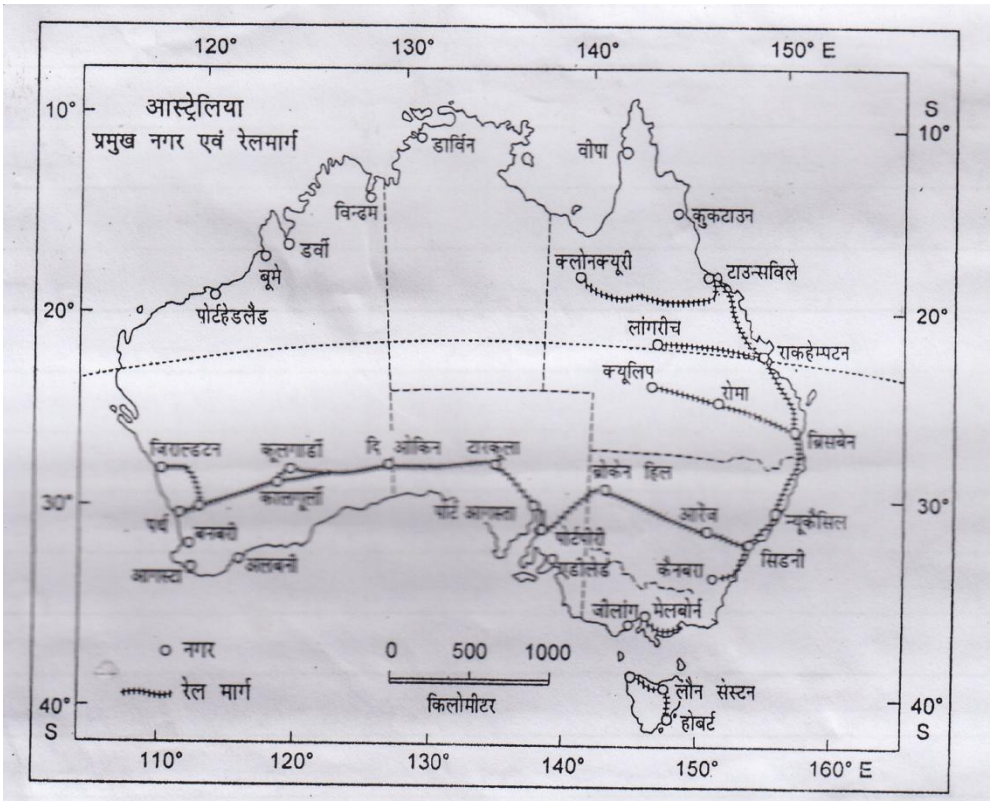

चित्र ~~30.7~~ : आस्ट्रेलिया के रेलमार्ग

यह रेलमार्ग आस्फेलिया महाद्वीप की दक्षिणी सीमा से प्रारंभ होता है और सिडनी से आगे बढता है ठोस परिवर्तन के कारण यात्रा या सामानों के परिवहन में समय अधिक लगता है। दूरी के अनुसर

सिडनी से पर्थ तक पहुचंने से सामान्यतः बहुत अधिक समय लगता है अतः मेज संबंधी समस्याओं का सामना करना पडता है आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित प्रमुख बन्दरगाह सिडनी से प्रारंभ होकर ग्रेट डिवाइडिंग रेन्ज को पार करके **ब्रोकेन हिल** नगर पहुंचता है दक्षिण पश्चिम में **पीटर बरो** ओर **पोर्टपिरी** होता हुआ आगस्टा पहुंचता है। इस क्षेत्र को स्वर्ण खद्दान के नाम से जाना जाता है अन्तः मे यह कालगूर्ली और कुलगार्डी नगर से होता हुआ हिन्द महासागर के तट पर पहुंचता है।

5. **केप–काहिरी रेलमार्ग–** इसके अन्तर्गत मिस्त्र में नील नदी के उत्तरी छोर पर **फाहिरा** बन्दरगाह और दक्षिणी छोर पर **केपटाउन** नगर को रेलमार्ग द्वारा मिलाने की योजना चल रही है मिस्त्र की राजधानी तथा प्रमुख बन्दरगाह **फाटिरा** से प्रारंभ होकर आस्वान हल्फा तथा खारतूम होते हुये **पाडा हाफा** तक जाता है। उसके बाद कुछ क्षेत्र नातो द्वारा पार किया जाता है क्योंकि यहां पर रेलमार्ग नही है इसके दक्षिण में जिम्बॉम्बे के नगर बुवावायो से होते हुये रेलमार्ग दक्षिण अफ्रीका में प्रवेश करते है।

काहिरा रेलमार्ग का उत्तरी और दक्षिणी भाग ही निर्मित है जबकि मध्यवर्ती रेलमाग्र रटित है पिछडा क्षेत्र होने के कारण परिवहन अविकसित है।

ब. सडक परिवहन (त्वंक ज्तंदेचवतज)

यातायात के साधनों मे सडक परिवहन का विशेष महत्व हैं। यहा सबसे सस्ता परिवहन है छोटी दूरी के लिये सडक परिवहन अधिक सुविधाजनक है, यातायात के माध्यम से वस्तुओं की उत्पत्ति स्थान उपभोक्ता स्थल तक पहुंचाया जा सकता है। सडकें दो प्रकार की होती है।

1. कच्ची सडक :– इस पर हल्के वाहन बैलगाडी, रिक्सा छोटे वाहन चलाये जाते हैं।

2. पक्की सडकः– इसमें वह वाहन चलते है जैसे बसें स्वचलित मोटर वाहन आदि चलाये जाते हैं जो अधिकारत नगरों को जोडती है।

सडको का विश्व के आधार पर वितरणः– संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस,ख कनाडा उत्तरी पश्चिमी यूरोपीय देश आदि में सडको का विकास अधिक हुआ है।

1. संयुक्त राज्य अमेरिकाः– विश्व की लगभग एकतिहाई सडके मंदिर गाडियां संयुकत राज्य अमेरिका मे पायी जाती है पूर्वी क्षेत्र में काफी नगरीकरण हुआ है और सडको का जाल बिछा हुआ है।

2. चीनः– इसके मैदानपी भागों में सडको का जाल फैला हुआ है चीन की राजधानी वीपिंग सर्व प्रमुख सडक केन्द्र है।

3. भारतः– विश्व में भारत का तीसरा स्थान है कच्ची व पक्की सडकों की लम्बाई 33 लाख किलोमीटर है ग्रामो को जोडने वाली सडके ग्रामीण सडके कहलाती है 57 प्रमुख राष्द्वीप राजमार्ग है।

4. जापान– जापान में भी सडको का जाल बिछा हुआ है। और 11. 05लाख कि.मी. लम्बी सडके हैं।

5. यूरोपीय देशः– पश्चिमी यूरोप में जनसंख्या का सकेन्द्रण अधिक पाया जाता है फ्रांस, बिट्रेन, जर्मनी, पोलैण्ड, यूरोपीय रूस यूकेन में सडकों का बाहुल्य है।

6. आस्ट्रेलियाः– यहाँ सडको का विस्तार दक्षिणी पूर्वी तथा दक्षिणी तटीय भाग में है और अधिक लम्बी है देश के अन्य भागों में भी सडकों का निर्माण किया जाता है।

7. दक्षिणी अफ्रीकाः– ब्राजील, बोलबीया, पीरू, अर्जेन्टाइना आदि में अनेक राजमार्गो का निर्माण किया जाता है।

8. अफ्रीका :– सबसे कम किसित क्षेत्र है सबसे अधिक सडको का निर्माण दक्षिण अफ्रीका में पायी जाती है। इसके अलावा मिस्त्र, सूडान, इथोपिया तथा पूर्वी अफ्रीका के देश कीनिया तंजानिया, मोजाम्बिक, जिम्बाम्बे में कम दूरी की सडकें पायी जाती है।

स. वायु परिवहन (।पत ज्तंदेचवतज)

वर्तमान युग को हवाई जहाज का युग कहा जाता है यातायात के लिये हवाई जहाज का प्रयोग किया जाता है क्योंकि तीव्र गति से कम समय में ही वायु परिवहन द्वारा कार्य किया जाता है वायु यातायात द्वारा मंहगी वसतुओं को ही भेजा जाता है प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, भूकम्प युद्ध आदि मेमं राहत, कार्य के लिये वायु परिवहन सर्वाधिक उपयोगी है। महंगा साधक होने के कारण वायु परिवहन का उपयोग सामान्यतः विकसित और संपन्न देश ही करते हैं।

वायु परिवहन को प्रभावित करने वाले कारक–

1. जलवायु– जलवायु का वायु परिवहन पर विशेष प्रभाव पडता है भारी वर्षा, तूफान, कोहरा, बर्फीली हवा, बादल यातायात की प्रमुख बाधांये है सामान्यतः स्वच्छ आकाशीय दशायें हवाइ उडान के लिये उत्तम समझी जाती है।

2. भूमि की धनावट– भूमि की धनावट का वायु परिवहन पर विशेष प्रभाव पडता है। इसके लिये समतल जमीन का होना आवश्यक है क्योंकि हवाई अड्डे पर हवाई जहाजों के लिये एक अच्छक मैदान होना चाहिए।

3. आर्थिक तत्वः– सामान और यात्रिओं की चढाई और उतारने के लिये काफी समस्या रहती है जहाँ पर वायुयान सेवा की पर्याप्त मांग हो उनहें यात्रियों, डाक और सामान की आपूर्ति मिलती रहे।

विश्व के प्रमुख वायु मार्ग– जो देश आर्थिक रूप से सुदृढ़ है और विकसित है वहां पर वायु यातायात सुगम होता है।

महाद्वीपों के अनुसार विश्व के प्रमुख हवाई अड्डे निम्न है।

पण उत्तरी अमेरिका में न्यूयॉर्क, न्यूआलियन्स, शिकागो, सेन, फ्रांसिस्को, लासएजिल्स, माद्रियल, ओहावा और मेक्सिको सिटी आदि

पपण दक्षिणी अमेरिका में रियोडिजेनेरो, डयूनोजआपर्स, सेन्टियागोय

पपपण यूरोप में लन्दन, पेरिस, बर्लिन, रोम, मास्को

पअण एशिया में– टोफियो, संघाई, बीजिंग, बैंकांक, सिंगापुर जकाती, कोलकाता, मुम्बई, चैन्नई, दिल्ली, कराची

अण अफ्रीका में– केपटाउन, नैरोबी, काहिरा

अपण आस्ट्रेलिया– सिडनी, मेलबोर्न, पर्थ, कैनबरा

प्दजमतदंजपवदंस ंउदक प्दजतंतमहपवदंस ज्तंकम

अर्न्तराष्ट्रीय और अन्तर क्षेत्रीय व्यापार

अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार, अर्न्तराष्ट्रीय सीमाओं या क्षेत्रों के भार–पार पूंजी, माल और सेवाओं का आदान प्रदान है इसका अर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक महत्व बढता जा रहा है अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पर औद्योगिकीकरण, उन्नत, परिवहन, वैश्रीकरण, बहुराजकीय निगम बाहय स्त्रोत इन सभी का व्यापक प्रभाव पडता है अर्न्तराष्कीय व्यापार के

द्वारा देश के अन्दर व बाहर की सीमा में उत्पत्ति व्यापार के द्वारा आयात निर्यात किया जाता है। अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार बहुत मंहगा व्यापार है अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के द्वारा पूंजी श्रम, उस क्षेत्र की जलवायु बहुत महत्व रखते है जैसे– चीन से सयुवक राज्य अमेरिका द्वारा श्रवप्रधान वस्तुओं का आयात करने की जगह चीन से ऐसा माल आयात कर रहा है जिसे चीनी श्रम के इस्तेमाल द्वारा उत्पादित किया गया है।

अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार दो या दो से अधिक देशों के मध्य संपन्न होता हैं जबकि अर्न्तक्षेत्रीय व्यापार एक ही देश के मध्य स्थापित होता है अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार एक ही देश के मध्य स्थापित होता है अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार देश के भीतर ही सीमित होते है अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार और अंतक्षेत्रीय व्यापार की निम्न भिन्नतायें हैं।

1. **<u>उत्पादन के साधनों की गतिशीलता</u>**:– अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में साधन विभिन्न देशों के मध्य प्राय प्रतिबंधित होते है जबकि अर्न्तक्षेत्रीय व्यापार में उत्पादन के साधन विभिन्न क्षेत्रों द्वारा मुक्त होते है इस प्रकार पूंजी श्रम में भी एक देश से दूसरे देश के बीच अगतिशीलता है जबकि अर्न्तक्षेत्रीय एक ही देश के भीत गतिशील होते है।

2. **प्राकृतिक साधनों में अंतरः–** अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में विभिन्न देशों के संसाधनों में भिन्नता पायी जाती है जबकि एक अन्तक्षेत्रीय व्यापार के संसाधनों में अधिकता पायी जाती है। उदाहरणः– विस्तृत भूमि वाला देश आएफेलिया अर्जेन्टीना जैसे देशों से गेहूं, ऊन, मांस आदि का निर्यात करता है भारत लौह अयस्क, चाय, चीनी, गरम मसाला आदि का प्रमुख निर्यातक है।

3. **भौगोलिक दशाओं में अन्तरः–** किसी भी देश के भीतर जलवायु, वनस्पति, मिट्टी आदि का उतना प्रभाव नही पडता जिना दो देशों के मध्य मिलता है कृषि व औद्योगिक उतपादन भौगोलिक दशाओं से प्रभावित होते है जैँसे ब्राजील कहवा तथा गन्ना, बांग्लादेश जूट तथा चावल उत्पादन के लिये प्रसिद्ध है जलवायु दशाओं में अन्तर के कारण शीतऋतु मे उत्तरी पश्चिमी यूरोपीय देशों में अन्तर के कारण शीतऋतु में उत्तरी पश्चिमी यूरोपीय देशों में फलों व सब्जियों की खेती संभव नही होती जबकि अवधि में भूमध्य सागरीय जलवायु वाले प्रदेशों में फलों और सब्जियों का खूब उत्पादन होता है।

4. **निम्न बाजार–** वस्तुओं के बाजार आप एवं आर्थिक सतर, प्रवृति, प्रचलन आदि में भिन्नताओं के कारण अलग अलग होते है देश के

आंतरिक भागों में इनमे मामूली अन्तर पाया जाता है यही कारण है कि किसी देश को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं को वहां के लोगों की रूचि, शैली आदत के मनुकूल तैयार किया जाता है किसी भी वस्तु का अर्न्तराष्ट्रीय बाजार अत्यंत व्यापक होता है जबकि अर्न्तराष्ट्रीय बाजार प्राय सीमित होता है।

5. **विनिमय की समस्या–** आन्तरिक व्यापार देश के अन्दर ही होता है और वस्तुओं के विक्रय में कोई समस्या नही आती किन्तु अर्न्तराष्कीय व्यापार देशों के मध्य होता है जिस कारण विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का चलन होता है। उदाहरण– किसी देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा में जब परिवर्तन होता है तब अनेक प्रकार की आर्थिक एवं व्यापारिक समस्यायें उत्पन्न होती है वर्तमान में अमेरिका में डॉलर व जापान में येन का अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में बहुत अधिक उपयोग किया जाता है और ये परस्पर परिवर्तनीय है।

6. **भुगतान शेष की समस्या** आन्तरिक व्यापार या अर्न्तक्षेत्रीय व्यापार में यह नही पायी जाती (समस्या) कुल आयात मूल्य से कुल आयात मूल्य के अन्तर को भुगतान शेष कहते है। निर्यात की तुलना में

आयात कम होने पर देश के पक्ष में आयात अधिक होने पर विपक्ष में होता है।

7. **<u>परिवहन लागतों में अन्तर</u>**– दो देशों के बीच आयात निर्यात करने में उच्च परिवहन लागतों की आवश्यकता होती है क्योंकि दोनों देशों के बीच दूरी बहुत अधिक होती है।

8. **<u>भिन्न राष्ट्रीय रीतियां–</u>** देश के भीतर व्यापार, वाणिज्य से संबंधित शासन की नीतियां समान होती है किन्तु अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं पर कर, विनिमय नियन्त्रण आदि कई प्रकार के प्रतिबंध लगाये जाते है। इस प्रकार अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार की नीतियां अलग होती है।

ब्वउचतंजपअम ब्वेजे जीमवतल

<u>तुलनात्मक लागत सिद्धांत</u> – सबसे पहले अर्थशास्त्री **रिकार्डो** ने अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धांत का प्रतिपादन किया तुलनात्मक लागत सिद्धांत इदस तथ्य पर आधारित है कि विभिन्न देशों में एक समान वस्तुओं की उत्पादन लागतों में अन्तर पाया जाता है भौगोलिक स्थिति, जलवायु संसाधनों की उपलब्धता, श्रम की कुशलता आदि में अनतर होने के कारण एक देश किसी वस्तु का

उत्पादन दूसरे देश की अपेक्षा कम लागत में कर सकता है। लागत कम होने पर लाभ की मात्रा अधिक होने की संभावना प्रबल हो जाती है।

रिकार्डो के अनुसार– ''प्रत्येक देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा जिनमें उसे तुलनात्मक लाभ अधिक अथवा तुलनात्मक हानि न्यूनतम होगी''।

तुलनात्मक लागत के विचार को स्पष्ट करते हुये रिकार्डो ने लिखा कि दो व्यक्ति जूते और टोपी दोनों वस्तुओं को बना सकते है उनमें से एक व्यक्ति दोनों ही कार्यो में अधिक है। किन्तु वह टोपियों के निर्माण में प्रतिस्पर्धा की तुलना में 20 प्रतिशत अधिक पक्ष है इस प्रकार दोनों ही देशों के हित में है कि अधिक कुशल व्यक्ति केवल जूतों का ही उत्पादन करे और कम कुशल व्यक्ति केवल टोपियो का निर्माण करें।

रिकार्डो के अनुसार – यही विचार तुलनात्मक लागत सिद्धांत के मूलाधार है।

सिद्धांतो की मान्यतायें–

1. व्यापार दो देशों के बीच होता है और ये दो समरूप वस्तुओं का उत्पादन करते है।

2. दोनों वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण श्रम लागत के उत्पादन के द्वारा होता हैं।

3. दोनों देशों से व्यापार वस्तु विनिमय प्रणाली के आधार पर होती है।

4. श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन हे और श्रम की पूर्ति अपरिवर्तित है।

5. दोनों देशों के मध्य स्वतन्त्र व्यापार है कोई प्रतिबंध नही पूर्ण बाजार होने के कारण दोनों वस्तुओ का विनिमय अनुपात सामान है।

लागत अन्तर (ब्वेज क्पर्मितमदबमे)

1. लागतों में पूर्ण या निरपेक्ष अन्तर– जब कोई देश किसी अन्रू देश की तुलना में किसी वस्तु का उत्पादन कम या अधिक लागत पर करता है तो इसे लागत में निरपेक्ष अन्तर कहते है।

2. लागतों में समान अन्तर– व्यापार के अर्न्तगत सम्मिलित दो वस्तुयें दोनो देशों में समान लागत अंतर पर उत्पादित होती है। लागतों का समान अंतर कहलाता है।

3. लागतों में तुलनात्मक अन्तर– **रिकार्डो** के अनुसार अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार मुख्यतः लागतों में तुलनात्मक अंतर के कारण होता है दो देशों के मध्य तुलनात्मक लागत अन्तर उस समय पाया जाता है जब एक देश को दूसरे देश की अपेक्षा दोनों वस्तुओं के उत्पादन में श्रेष्ठता प्राप्त होती है।

सिद्धांत की अलोचनाः– सर्वप्रथम रिकार्डो का तुलनात्मक लागत का सिद्धांत ही अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का मूलाधार या उसके बाद **बार्टिन ओहलिन** तथा फैके डी. ग्राहम ने इस सिद्धांत की कटु अलोचना की। इसकी निम्न आलोचनायें इस प्रकार है।

1. इसमें परिवहन लागतों की उपेक्षा की गयी है जो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

2. यह सिद्धांत मूल्य के श्रम सिद्धांत की समरूपता पर आधारित है जो सही नही है।

3. यह सिद्धांत दो देश, दो वस्तु पर आधारित है जो पूर्ण रूप से गलत है।

4. यह सिद्धांत अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के केवल पूर्ति पक्ष पर ही विचार करता है और मांग पक्ष को छोड देता है।

5. तुलनात्मक लागत सिद्धांत व्यापार में पौधोगिकीय की भी अपेक्षा करता हे।

6. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में सन्तुलन कैसे स्थापित होता है इस तथ्य की व्याख्या भी नही करता।

।कअंदजंहमे. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से अनेक प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक लाभ प्राप्त होते है। इसके लाभ निम्न प्रकार है

1. उत्पादन में वृद्धिः- अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देख्श उन वस्तुाअें के उत्पादन मे विशिष्ट महत्व रखते हैं। जिन्हें व कम लागत पर प्राप्त करते हे सभी देश उन वस्तुओं का नियर्ज्ञत करते है जिन वस्तुओं का उत्पादन वह अन्य देशो की अपेक्षा कम लागत पर तैयार कर लेता है। परिणाम स्वरूप वस्तु के उत्पादन में वृद्धि होती है।

2. राष्ट्रीय आप में वृद्धिः– आप में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेने तथा उनके निर्यात से अधिक आप प्राप्त होती हैं विदेशी व्यापार से उसकी माप में वृद्धि होती है।

3. अतिरेक का निर्गम– अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से पहले जो संसाधन व्यर्थ पडे रहते है उन्हें भी व्यापार के माध्यम से उपयोग में लाया जाता है।

4. संसाधनों का कुशल प्रयोग– अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में प्राय उन वस्तुओं विशिष्टीकरण हासिल कर लेते है जिनके उत्पादन में ये कुशल होते हैं।

5. श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के लाभ– यह वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण और उनसे उत्पन्न लाभों के क्षेत्र को विस्तीर्ण कर देता है जिससेक अर्थ व्यवस्था सुदृढ़ बनती है और समाज के वर्ग लाभान्वित होते है।

6. बाजार का विस्तार– अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से देश की सीमाओं का विस्तार होता है। जिससे वस्तुओं की आपूर्ति आसानी से होने लगती है जिससे आर्थिक लाभ में वृद्धि होती है।

7. बडे पैमाने पर उत्पादन– मांग में वृद्धि को देखते हुये उत्पादन में वृद्धि हेतु वस्तुओं का उत्पादन बडे पैमाने पर किया जाने लगता है और उत्पादन की मात्रा अधिकतम बिन्तु तक पहुंच जाती है।

8. वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता– अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में किसी देश के नागरिक उन वस्तुओं तथा सेवाओ का उपयोग करते है जिनका उत्पादन देश में नहीं होता आयात द्वारा ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं को अनेक देशों से मंगाया जाता है जहां पर उनकी कीमतें कम होती है इससे मानव समाज पर काफी प्रभाव पडता है।

9. प्रौद्योगिकीय सुधार– व्यापार में प्रतियोगिताओं के कारण प्रत्येक देश अपनी उत्पदन विधियों मे सुधार करने के लिए प्रयत्न शील रहता है उत्तम गुणवत्ता वाली वस्तु के बाजार क्षेत्र में विसतार किया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन विधियों में निरन्तर सुधार होता रहता है।

10. मूल्यों में समत्ता– वस्तुये कम मूल्य वाले स्थान से अधिक मूल्य वाले स्थान के लिये भेजी जाती है। इस प्रकार व्यापारिक क्रिया के फलस्वरूप मूल्यों में समानता आने की प्रवृति पायी जाती है।

11. सांस्कृतिक लाभ– अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के द्वारा विभिन्न देश व वहां के लोग एक दूसरे के संपर्क में आते है एक दूसरे की संस्कृतियां भाषा, धर्म, परम्परायें आदि से परिस्थित होते हैं। इससे विभिन्न देशों के लोगों मे पारस्परिक सामन्जस्व स्थापित होता है। वर्तमान कालीन वैश्वीकरण की प्रवृत्ति विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के साथ ही सांस्कृतिक सामन्जस्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

ज्लचवसवहल वि डंतामजे

बाजार का वर्गीकरण

अ. बाजार के वर्गीकरण को निम्न वर्गो में बांटा गया है। (क्षेत्रीय विस्तार)

1. स्थानीय बाजारः– जब किसी वस्तु के क्रय करने वाले और विक्रय करने वाले एक ही सीमित स्थान तक होते है तब ऐसे बाजार को स्थानीय बाजार कहमते है इसका सबसे अच्छा उदाहरण ग्रामीण बाजार है।

2. प्रादेशिक बाजार– जब किसी वस्तु की मांग अपेक्षाकृत बडे क्षेत्र अथवा पूरे प्रान्त में होती है तब उस वस्तु की बाजार को प्रान्तीय या प्रादेशिक बाजार कहा जाता है।

3. राष्कीय बाजार– जब मांग पूरे देश में फैली होती है तब ऐसी वस्तु के बाजार को राष्कीय बाजार कहा जाता है।

4. अर्न्तराष्ट्रीय बाजार– इसमें वस्तु की मांग विश्व व्यापी होती है और क्रय और विक्रय पूरे विश्व मे फैले हुये होते है ऐसे बाजार को अर्न्तराष्ट्रीय बाजार कहते हैं।

ब. कालावधि के आधार पर वर्गीकरण– इसे निम्न चार वर्गो में बांटा गया है।

1. भति अल्पकालीन बाजार– इसमें वसतु की पूर्ति स्थिर होती है और शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं को जैसे– सब्जी, अण्डा, दूध, दही आदि का बाजार अति अल्पकालीन होता है।

2. अल्पकालीन बाजार– इस तरह के बाजार की अल्पावधि कुछ माह (6 माह) हो सकती है अन्न, तिलहन, औद्योगिक वस्तु आदि का बाजार अल्पकालीन हो सकता है।

3. दीर्घकालीन बाजार– इसमें वस्तु की आपूर्ति कुछ वर्षो में मांग के अनुरूप नियन्त्रित की जाती है इसमें वस्तु के निर्धारण पर वस्तु की मांग और पूर्ति का लगभग समान प्रभाव पाया जातरा है।

4. भति दीर्घ कालीन बाजार– इसकी अवधि काफी लम्बी होती है अतः 20 वर्ष से प्रारंभ होकर 40–50 वर्ष तक हो सकती है इसके अन्तर्गत उपभोक्ताओं की मांग, अभिरूचि, फैरान आदि के अनुसार तदीन उद्योग स्थापित करके वस्तु की आपूर्ति को सीमा तक बढाया जा सकता है।

स. आवृति के आधार पर वर्गीकरण–

1. साप्ताहिक बाजार– साप्ताहिक बाजार का समय निश्चित होता हैं। साप्ताहिक बाजार अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में लगाते है जहां पर जनसंख्या घनतव कम होता है अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती है नगरों में साप्ताहिक बाजार कम पाये जातेक है साप्ताहिक बाजारों में अपेक्षाकृत दूर तक के क्रय व विक्रय करने वाले क्रेता एकत्रित होते है इसमें उक निश्चित दिन जैसे रविवार या मंगलवार दिन निर्धारित होता है।

2. द्विसप्ताहिक बाजार– द्वि सप्ताहिक बाजार तात्पर्य दो बार सपताह में लगते हैं ऐसे दो बाजारों के मध्य 2 या 3 दिन का अन्तराल होता हैं अपेक्षाकृत सघन जनसंख्या वाले कृषि प्रधान ग्रामीण क्षेत्रो में अधिकतर द्वि सप्ताहिक बाजार ही पाये जाते है।

3. त्रि साप्ताहिक बाजार– त्रिसाप्ताहिक बाजार का आयोजन सप्ताह में तीन दिन किया जाता है उदाहरण रविवार, मंगलवार, बृहस्पतिवार

4. दैनिक बाजार– सप्ताह में दिन छोडकर लगने वाले बाजार को स्थायी बाजार के उदाहरण है दैनिक बाजार पूर्णत अभिगम्क्प स्थानों पर स्थापित होते है जहां पर वस्तुओं को लाने लेजाने में कोई भी असुविधा नही होती दैनिक बाजार की दुकाने स्थायी होती है वस्तुओं का आकार लघु से लेकर दीर्घ तक हो सकता है।

द. क्रेताओं तथा विक्रेताओं के आधार पर वर्गीकरण–

1. स्वतन्त्र बाजार– इसमें क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है और वस्तु के मूल्य में स्वतंत्रतामापी जाती हैं। वस्तुओं की आपूर्ति प्रतिबन्धों से मुक्त रहती है।

2. एकाधिकृत बाजार– इसमें एक ही क्रेता की संख्या एक ही होती हैं और वस्तु की मांग को क्रेता निरूचित करता है और वस्तु की मांग सर्वाधिक प्रभावित होती हैं।

3. अत्याधिकृत बाजार– विक्रेताओं व क्रेताओं की संख्या प्रमुख के आधार पर दो प्रकार की होती है।

अ. विक्रेता अत्याधिकृत बाजार– विक्रेता की संख्या अल्प या सीमित होती हैइसमें वस्तुओं के मूल्य में लगभग स्थिरता पायी जाती है।

ब. क्रेता अल्पाधिकृत बाजार– इसमें क्रेताओं की संख्या कम होती है वस्तु के मूल्य पर पूर्ण नियन्त्रण कम पाया जाता है।

4. द्वयाधिकृत बाजारः– द्वयाधिकृत बाजार के भी दो रूप है।

अ. विक्रेता द्वयाधिकृत बाजार– इसमें दो विक्रेता होते है और दोनों का ही वस्तु पर पूर्ण नियन्त्रण होता है दोनों विक्रता समान क्वालिटी वाली वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।

ब. क्रेता द्वयाधिकृत बाजार– इसमें दो क्रेता होते है ये दोनों मिलकर बाजार पर पूर्ण नियन्त्रण रखते है दोनो ही मिलकर वस्तु के मूल्य को गिराने या वृद्धि करके वस्तु के मूल्य को बढाने में सक्षम होते है।

य. समुदाय के अनुसार वर्गीकरण

1. ग्रामीण बाजार 2. नगरीय बाजार

1. ग्रामीण बाजार– ग्रामीण क्षेत्रों मे जो बाजार केंन्द्र सत्यापित है उन्हें ग्रामीण बाजार कहते है जो नगरीय बाजार की तुलना में लघु, अल्पविकसित होते है आवश्यकता तथा परिवेश के अनुसार ग्रामीण बाजार मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक अथवा यर्द्ध साप्ताहिक हो सकते है अर्द्ध नगरीय या बडे बाजार केन्द्रों पर दैनिक बाजार भी विकसित हो जाते है जहाँ विविध प्रकार की उपभोक्ता तथा कृषि से संबंधित वस्तुयें आदि का क्रय विक्रय होता है।

2. नगरीय बाजारः– नगरों में स्थायी बाजार मिलते है नगरों तथा महानगरों में विशिष्ट वस्तुओं के बाजार विकसित होते है ऐसे बाजारों को क्रय विक्रय की प्रकृति के आधार पर दो वर्गो में बांटा जाता है।

अ. फुटकर विक्रय ब. थोक विक्रता

फुटकर बाजारों का निर्माण केन्द्रिय भाग में होता है यहां वस्तुओं का विक्रय फुटकर दर से किया जाता है नगर के विशिष्ट भाग विशेष रूप से थोक व्यापार क्षेत्र में विकसित होते है जहां पर वस्तुओं का विक्रय थोक क्रेताओं को यिका जाता है जैसे अनाज मण्डी, सब्जी मण्डी

Markets Network In rural Societies –

त्नतंस डंतामज ैलेजमउ. विकासशील देशों में ग्रामों की अधिकत्ता पायी जाती है यहां पर पशु पालन, कृषि आदि लोगों के प्रमुख व्यवसाय है यहाँ प्रतिव्यक्ति आप बहुत कम होती है निम्न क्रय राविक के कारण ग्रामीण लोगों की आवश्यकतायें भी सीमित होती है जैसे– विकासशील देशों में कृषि प्रायः निर्वाह मूलक होती है यहां प्रत्येक किसान अपनी आवश्यकता के अनुार कृषि उत्पादन करते है उनके पास विक्रय हेतु अवशेष नाम के लिये रह जाता है। ग्रामीण

क्षेत्रों में व्यापारिक किराये कम हो पाती है यहां पर लघु आकार पर निम्न कोटि को बाजारों की बहुलता होती है बाजारों की आवृति, आकार, जनसंख्या, सामान्य आर्थिक स्तर, आदि के अनुसार निर्धारित होते हैं।

अधिकाशं विकासशील देशों के ग्रामीण पौत्रों में विपणन केन्द्रों को तीन वर्गो में बांटा गया है।

1. आवर्ती विपणन केन्द्र

2. दैनिक विपणन केन्द्र

3. दैनिक मध्यावर्ती विपणन केन्द्र

1. आवर्ती विपणन केन्द्र– यहां पर सप्ताह में केवल एक या दो बाजार लगते है। किसी बाजार केन्द्र पर लगने वाले दिनों की संख्या को आवर्तिता कहते हैं **पी.** हैगेट के अनुसार 1979 आवर्तिता का आशय कुछ स्थानों पर लगने वाले ऐसे बाजारों से है जिनके दिन पहले से ही निश्चित होकते है ऐसे क्षेत्रों की प्रकृति अस्थायी होती है सप्ताह के अन्य दिनों में विपणन कार्य प्रायः स्थगित रहता है। आवर्ती या अस्थायी विपणन केन्द्र छोटे छोटे है इनके मध्य पारस्परिक

दूरी कम होती है आवर्ती विपणन केन्द्राकें के पास पास विकसित होने के लिये उत्तरदायी कारण निम्न है।

1. जनसंख्या के आर्थिक स्तर का निम्न होना।

2. उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का सीमित होना।

3. विभिन्न उपभोक्ता समूह की क्रय राविक का कम होना।

4. दूरवर्ती बाजार केन्द्रों तक पहुंचने के लिये परिवहन ठ नप में असमर्थ होना।

विपणन केन्द्रों को लगने वाले दिनों की संख्या के आधासर पर निम्न वर्गो में रखा गया है।

अ. साप्ताहिक विपणन केन्द्र– ऐसे आवर्ती बाजार का (क्रेता व विक्रेताओं) एकत्रीकरण सप्ताह में केवल एक दिन होता है और उसी दिन वस्तुओं के क्रय विक्रय का कार्यहोता है।

ब. द्विवसप्ताहिक विपणन केन्द्र– इसमें सप्ताह में दो दिन बाजार लगते है इसमें पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के आधार पर अस्थायी दुकानों में क्रेता व विक्रेताओं का एकत्रीकरण होता है इन दिनों

का चयन ऐसे समय पर किया जाता है जब समीप के बाजार उस दिन नही लगते।

2. दैनिक विपणन केन्द्र– यह विपणन केन्द्र स्थायी होते है। क्रय विक्रय की क्रियायें प्रतिदिन संपन्न होती है यह दुकाने स्थायी भवनों मे रहती है सप्ताह में एक दिन अवकाश रहता है जब बाजार बन्द रहता है विपणन का कोई भी कार्य संपन्न नही होता दैनिक विपणन केन्द्र ऐसी जगह स्थापित किये जो है जहाँ सडक मार्ग सुगमता से हो तथा परिवहन आसानी से प्राप्त हो सके।

3. दैनिक–सह आवर्ती विपणन केन्द्र– दैनिक सह आवर्ती विपणन केन्द्र अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में स्थित होते है। दैनिक विपणन केन्द्रों पर सप्ताह के एक या दो विशिष्ट दिवसों पर अस्थायी दुकानों तथा अधिक उपभोक्ताओं का एकत्रीकरण हो जाता है।

डंतामजै लेजमउ पद न्तइंद म्बवदवउल

व्यापार नगरीय केन्द्र का प्रमुख कार्य होता है व्यापार विहीन नगर की कल्पना नही की जा सकती नगरीय विकास क्रिया में व्यापारिक कार्पो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जो निम्न है–

1. कल कार्यशील जनसंख्या का व्यापारिक क्रिया में संलग्न व्यक्तियों का प्रतिशत

2. नगर के किन–किन भागों में कितनी व्यापारिक क्रियायें संपन्न हो रही है।

अधिकाशं क्रियायें व्यापार केन्द्रों पर ही संपन्न होती हैं।

1. फुटकर व्यापार
2. थोक व्यापार
3. वित्त बीमा तथा सरकारी सम्पत्ति
4. व्यावसायिक व्यक्तिगत एवं व्यापारिक सेवायें
5. सरकारी व्यापार

1. नगर की फुटकर व्यापार संरचना– फुटकर व्यापार पर व्यक्ति की आप आदतों तथा अन्य सामाजिक आर्थिक दशाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव पाया जाता है। फुटकर व्यापार क्षेत्र नगर के विभिन्न भागों में विकसित होते है। व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होने के कारण फुटकर व्यापार नगर के उस भाग मे सकेन्द्रित होते है। जहां पर अधिकाशं नगर वासी आसानी से कम खर्च पर पहुंच

सकते है। इनके सकेन्द्रण के लिय इस प्रकार के बाजार उपयुवक होते है। नगर की फुटकर व्यापार संरचना निम्न प्रकार की होती है।

अ. केन्द्रिय व्यापार क्षेत्र

ब. ब्राह्य व्यापार केन्द्र

स. प्रमुख व्यापार गली

द. पडोसी व्यापार गली

इ. एकाकी दुकान समूह

2. नगर की थोक व्यापार संरचना– थोक व्यापार केन्द्रिय व्यापार क्षेत्र संलग्न होता है यहां बडे–बडे स्टोर, थोक व्यापार से संबंधित भवन पाये जाते है। यह इंकाइया रेलमार्ग व सडक मार्ग द्वारा स्थापित होती है इसके लिये विस्तृत भूमि की आवश्यकता होती है वाहनों के गैराज की आवश्यकता होती है जिससे सामान को उतारने व चढाने में परेशानी न हो। थोक व्यापार के व्यापारी अपनी वस्तुओं का विक्रय सीधे उपभोक्ताओ के साथ नही बल्कि फुटकर व्यापारियों को करते है। थोक व्यापारियों के पास अपने गोदाम या स्टोर होते हैं

थोक व्यापार की वस्तुओं को दो वर्गो में रखा जा सकता है।

अ. वितरक थोक व्यापार

ब. भण्डारण थोक व्यापार